भागवत दर्शन

खण्ड ६४

भागवती स्तुतियाँ (२)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्विता ।
कृतं वै प्रभुदत्तेन श्रीभागवतार्थं सुदर्शनम् ॥

लेखक

श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

प्रकाशक
संकीर्तन-भवन,
प्रतिष्ठानपुर झूसी (प्रयाग)

द्वितीय संस्करण] फाल्गुन कृ० १५० २०२० [मूल्य १.२५ न०पै०

मुद्रक—भागवत प्रेस, प्रतिष्ठानपुर, झूसी प्रयाग

विषय-सूची

निवेदन

श्रीभागवत दर्शन में जो भागवती स्तुतियों के खण्ड हैं, उन का आरम्भ ६३ वें खण्ड से होता है, हमने अन्य खण्डों की ही भाँति इनके भी अध्याय रखे थे। हमारे कुछ प्रेमी पाठकों ने सुझाव दिया कि स्तुतियों के साथ यदि श्रीमद्भागवत की मूल स्तुतियाँ भी देदी जायँ तो जो संस्कृत जानते हैं, उन्हें विशेष आनन्द होगा। जो संस्कृत नहीं समझ सकते, वे भी नित्य पाठ करने से उनका भाव समझ सकेंगे और उन्हें भी समझने में सुविधा रहेगी।

यह सुझाव हमको भी रुचिकर प्रतीत हुआ। श्रीमद्भागवत के श्लोक वेद मन्त्रों के तुल्य हैं, उनकी स्तुतियाँ तो अत्यन्त ही दिव्य हैं, उनमें समस्त वेदार्थ भरा पड़ा है। सभी उपनिषदों का सार है किसी किसी में तो कई-कई मन्त्रों का सार सिद्धान्त निहित है। हमने केवल अपनी भाषा में उनका भावार्थ ही दिया है, उन का विशेष विस्तार नहीं किया गया है।

यद्यपि सभी स्तुतियों में प्रायः एक सी ही बातें हैं। फिर भी कुछ न कुछ विशेषता सब में है। कुछ लोग कहते हैं एक ही बात को आप बार-बार क्यों लिखते हैं? बात तो एक ही है, सम्पूर्ण वेदों में पुराण तथा उपनिषदों में वही एक बात ही उसी को अनेक रूपों में कहा गया है। एक ही मंत्र का बार-बार जाप करते हैं, एक ही पुस्तक का बार-बार पाठ करते हैं किसी के शरीर में पीड़ा है वह बार-बार आह आह करता है आप कहें एक बार आह कह दो बार-बार कहने से क्या लाभ? जब तक उसकी पीड़ा शान्त न होगी तब तक वह एक ही शब्द को कहता रहेगा।

इसी प्रकार जब तक भगवत् चरणों में अनन्य प्रेम न हो इन एक ही भाव की स्तुतियों को बारम्बार पढ़ते रहना चाहिये।

कुछ लोग कहते हैं, एक ही बात को बार-बार कहना पिसे को पीसना है, कोई नई बात कहो। यह तो उसी प्रकार है जैसे आप कहें कि आप अपनी सभी पुस्तकों में इर फिरकर वे ही अ्था इई इन ५२ स्वर व्यञ्जनोंका प्रयोग करते हैं, प्रत्येक पुस्तकमें नये शब्द लाओ। नये शब्द लावें कहाँ से वे ही १६ स्वर ३६ व्यंजन हैं जो भी लिखो इन्हीं में लिखा जायगा। इसी प्रकार भगवान् को कोई भी स्तुति करे यही कहेगा आप सर्वज्ञ हैं, सर्वात्मा हैं, जगदाधार हैं, जगत् नियन्ता हैं, आप जगत् की स्थितिलय तथा जन्म के कारण भी हैं और इससे पृथक् भी हैं। यह भगवान् में प्रेम उत्पन्न करने का उपाय है। पाठक पाठिकायें इन स्तुतियों को श्रद्धाभक्ति सहित पढ़ें और जो कर सकें इन्हें कण्ठस्थ भी करें। यही मेरी सबसे प्रार्थना है। यह सम्पूर्ण स्तुतियों के समाप्त होने पर फिर कोई सरस प्रसङ्ग होगा। उसकी प्रतीक्षा पाठक पाठिकायें अभी से करें।

प्रभुदत्त

मेरी रामकुठरिया

(भूमिका)

तस्मात्त्रीणि पदान्येव वृणे त्वद्वरदर्षभात् ।
एतावतैव सिद्धोऽहं वित्तं यावत् प्रयोजनम् ॥ *

(श्रीभा० ८ स्क० १९ अ० २७ श्लो०)

छप्पय

है जीवन द्वै दिवस करै मूरख क्यों ममता ।
फूल्यौ फूल्यौ फिरै सोचि कै दिन की प्रभुता ॥
सङ्ग देह नहिं जाय कुटी घर कैसे जावै ।
जश अपजश रह जाय काम वे ही हरि आवै ॥
कुटी लँगोटी, भसमतनु, काम एक नहिं आयँगे ।
भाग्यभोग सुख दुख समुझि, भजि प्रभु पार लगायँगे ॥

पुराणों की एक कथा है, एक बार इन्द्र के मन में आयी कि

---

* अपनी कुटिया के लिये ३ पग पृथिवी माँगते हुए वामन भगवान् राजा बलि से कह रहे हैं—"राजन् ! मुझे अधिक नहीं केवल तीन ही डग भूमि चाहिये इसीलिये तीन ही पैर माँगना चाहता हूँ । इतने से ही मेरा निर्वाह हो जायगा, जितना प्रयोजन हो उतना ही वित्त संग्रह करना चाहिये अधिक नहीं ।"

इन्द्र के लिये इतना ज्ञान पर्याप्त था, अब वहाँ न ऋषि थे न वटु। इन्द्र को ज्ञान हो गया, विश्वकर्मा को भवन निर्माण से अवकाश मिल गया।

मनुष्य को एक भ्रम हो गया है, और वह भ्रम ऐसा सुदृढ़ हो गया है, कि अनेक यत्न करने पर भी छूटता नहीं। ज्ञानी हो, अज्ञानी हो, पंडित हो, मूर्ख हो, त्यागी हो, रागी हो, विरागी हो। सबको यह भ्रम है कि मेरा यह काम हो जाय, अमुक वस्तु मिल जाय, मेरी ऐसी परिस्थित हो जाय तो मैं सुखी हो जाऊँ। देखिये यह विषय ऐसे समझ में न आवेगा। अपने निज के जीवन से ही अनुभव कीजिये। पहिले एक छोटी सी इच्छा उठती है, उसकी पूर्ति का मनुष्य प्रयत्न करता है, उसके लिये श्रम करता है, रात दिन सोचता है, उसमें राग होता है सोचता है मेरी यह इच्छा पूर्ण हो जाय तो मैं सुखी हो जाऊँगा। वह इच्छा पूरी हुई, फिर उससे बड़ी एक और इच्छा होती है, फिर उससे भी बड़ी, फिर उससे भी बड़ी। यह इच्छा डाइन इतनी लम्बी चौड़ी है, कि इसका कहीं अन्त नहीं।

छोटा सा बच्चा है, खिलौना देखते ही उसकी इच्छा उसे लेने की हुई। उसके लिये रोता है, चिल्लाता है, माता पिता से रूठता है मचलता है। वह खिलौना मिल जाता है, क्षण भर सुख होता है, फिर दूसरा चाहता है। खिलौने के पश्चात् उसे पैसे का महत्व प्रतीत होता है। एक पैसा पा जाता है, तो उसे इतनी प्रसन्नता होती है मानों भूमन्डल का राज्य प्राप्त हुआ। फिर रुपये को बड़ा समझता है, रुपया की इच्छा करता है, फिर मुहर की इच्छा करता है। बड़ा होने पर वस्त्र, पुस्तक, चित्र चाहता है। फिर वहू की इच्छा करता है, फिर पुत्र की फिर पौत्र की। इस डाइन इच्छा का उसे कहीं अन्त नहीं मिलता।

अपने इस छोटे से जीवन में ही मैंने कितने उलट फेर देखा है, फिर भी इच्छा पूर्ति नहीं होती यह भ्रम जानता नहीं कि संसारी वस्तुओं के रहने न रहने से सुख दुःख का सम्बन्ध नहीं। यह तो ऐसी रवड़ की थैली है, कि इसमें जितनी ही फूँक मारते रहो उतनी ही बढ़ती जायगी। एक आदमी है छोटी-छोटी पुस्तकें घूम-घूम कर बेचता है, सोचता है, एक छोटी सी दुकान हो जाय तो मैं सुखी हो जाऊँ, छोटी दुकान हो जाती है, तो उतने से निर्वाह नहीं होता, कुछ बड़ी हो, स्वयं पुस्तकें छपवावें, अपना प्रेस हो जाय। वह भी हो गया। पुस्तकें लाखों बिकें तो वे भी बिकने लगीं किन्तु इच्छा पूर्ति नहीं हुई दुःख बढ़ता ही गया, अशान्ति अधिकाधिक उग्र रूप रखती सी दिखाई देने लगी अब उनसे कहो तो कहते हैं क्या करें महाराज! इतने झँझट बढ़ गये हैं, कि मरने का भी अवकाश नहीं।

एक आदमी पर ४ बीघा खेत है, वह सोचता है १० बीघा हो जाय तो भली भाँति निर्वाह हो जाय। १० बीघा हो गया उस में भी कमी आ गयी, एक बहुत बड़े भूमिपति ने उसे गोद ले लिया। एक बड़े विस्तृत भूखंड का स्वामी हो गया, किन्तु इच्छा उससे भी अधिक बढ़ गई कितनी भूमि पड़ी है, किन्तु भूमि तृष्णा इतनी अधिक हो गयी कि उसका पेट नहीं भरा वह ज्यों की त्यों भूखी की भूखी ही बनी है।

एक वैद्य है, चूरनचटनी बेचता है, सोचता है कहीं कोई वैतनिक कार्य मिल जाय तो नित्य की चिंता छूट जाय, निश्चित द्रव्य प्रति मास मिल जाय, ऐसा भी हो गया, उसमें भी असंतोष। क्या पचास रुपये से होता है, अपना निजी चिकित्सालय हो, वह भी हो गया अब रोना हुआ रोगी नहीं आते। लाओ औषधि बिक्री बढ़ाते जाओ बढ़ाते जाओ। इस बढ़ोत्तरी का अन्त नहीं, अब—

काश नहीं जिस सुख शान्ति के लिये इतना झंझट बढ़ाया वह कोसों दूर भग गयी-किन्तु फिर भी तृष्णा छूटती नहीं।

एक लड़का है। अनाथ, दरिद्र, धन हीन, सोचता है कहीं दसबीस रुपये मिल जाय तो कोई छोटा मोटा व्यापार कर लूँ सुखी हो जाऊँ। अधिक धन की तृष्णा नहीं। अच्छी प्रकार निर्वाह हो जाय। निर्वाह तो सभी का होता है। किन्तु अच्छी प्रकार निर्वाह तो इन्द्र का भी नहीं होता। उसे भी चिन्ता लगी रहती है दूसरों को तप करते देखते ही उसका समस्त सुख तुरन्त दुःख के रूप में ही परिणित हो जाता है। आमोद प्रमोद का स्थान चिन्ता और ईर्ष्या ले लेती है। अच्छी तरह निर्वाह संसार में किसी का भी नहीं होता कुछ न कुछ कमी सभी को तो बनी रहती है। हाँ, तो उस लड़के का भाग्य जगा, एक बहुत बड़े व्यापारी से सम्बन्ध हो गया। वह मिली साथ ही अपार धन भी। यथेष्ट धन, अपार ऐश्वर्य अधिकाधिक सम्मान पाकर भी उस दिन कह रहा था आप लोग समझते होंगे हम स्वच्छ शुभ्र वस्त्र पहिने मोटरों में घूमते रहते हैं। बड़े सुखी होंगे। किन्तु हमारे मन की दशा हमीं जानते हैं। ये मोटरें अग्नि के पुञ्ज हैं इनकी लपटें हमें जलाती रहती हैं। हम भीतर बाहर जलते रहते हैं।

किस किस की गिनाऊँ सभी एक ही तराजू के चट्टे बट्टे हैं सभी की एक सी दशा है। सभी दुखी हैं। सभी अशान्त हैं। सभी को कमी है सभी तड़प रहे हैं सभी आशा पर जी रहे हैं कि अब के लाभ हो जाय अबके यह काम बन जाय तो हम सुखी हो जायँ. किन्तु ऐसा होता नहीं कोई सोचता है मैं संसद का या विधान सभा का सदस्य बन जाऊँगा तो सुखी होऊँगा। बड़ा ठाठ बाट रहेगा प्रभाव बढ़ेगा। किन्तु समस्त संसद या विधान सभाओं के सदस्यों से पृथक् जाकर पूछिये सभी एक

सा बेसुरा राग अलापेंगे, सभी अपने अभावों के गीत गावेंगे, सभी अपनी विपत्ति की गाथा सुनावेंगे, सभी अपने को परम दुखी बतावेंगे।"

मानव एक सी स्थिति में भी सुखी नहीं रहता। कभी सोचता है। ऐसा करें तब सुखी होंगे, किन्तु वैसा होने पर भी वह दुखी बना रहता है। सुख दुख बाहरी वस्तुओं या परिस्थितियों में थोड़े ही है यह तो अपने भीतर है। तिल का पहाड़ दीखता है। छोटी सी बात है। सब जानते हुए भी अज्ञानी बना है यही भगवान् की वैष्णवी माया है। आज कल के पश्चिमी चिकित्सक कहते हैं घोड़े की लीद में एक कीटाणु होता है। धूलि में भी होता है वह घुस जाता है तो श्लेष्मा होता है। ज्वर आ जाता है सभी रोगों के कीटाणु वे पकड़ते हैं। विपरीत भावना से मैं समझता हूँ उनके मस्तिष्क में ही कीड़े पड़ गये हैं। अरे बाबा! रोग के कीटाणु बाहर से नहीं आते वे तो भीतर ही बात पित्त कफ के द्वारा होते हैं। ज्वर बाहर से नहीं आता। लोग झूठे ही कहते हैं ज्वर आ गया। कहना चाहिये ज्वर हो गया। इसी प्रकार सुख दुख बाह्य वस्तुओं पर अवलम्बित नहीं हैं। मन के हारे हार है, मनके जीते जीत। एक आदमी है। जाड़े के दिनों में घोर जङ्गल में उसके वस्त्र उतार कर नङ्गा कर दो। वह अपने को सबसे अधिक दुखी समझेगा दूसरा एक दिगंबर साधु है। वस्त्र तो उसके भी उतरे हैं, नंगा तो वह भी है किन्तु वह वैराग्य के झोंक में नग्नता के ही कारण अपने को सुखी अनुभव करता है। एक आदमी है उसे एक समय भोजन दो बिना भोजन के उसे सम्पूर्ण संसार सूना-सूना सा प्रतीत होगा। अपने को सबसे अधिक दुखी अनुभव करेगा। दूसरा है उसने ३० दिन का निराहार व्रत किया है वह अन्न न खाने से अपने

में एक सुख का संतोष का अनुभव करेगा। यदि दुख सुख का कारण अन्न वस्त्र ही होते तो या तो दोनों ही सुखी होते या दोनों ही दुखी किन्तु एक सुखी एक दुखी इससे सिद्ध होता है मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः। मन ही सुख दुख का कारण है। फिर भी मनुष्य बाहरी परिस्थितियों में सुख दुख खोजता है यह तो भगवान् की बलवती माया का चक्कर है।

यह रागी विरागी गृहस्थ विरक्त सभी को होता है। काशी में जिन दिनों मुझे यही धुन सवार थी गंगा किनारे दिगंबर बनकर पक्षियों की भाँति स्वेच्छा से विचरण करेंगे, किसी की ओर देखेंगे नहीं किसी से बोलेंगे नहीं किसी वस्तु का संग्रह न करेंगे, परम सुखी तभी होंगे। बात तो सत्य थी किन्तु जब मन भी निर्वासना हो उसमें संग्रह की इच्छा न हो तब बाहरी त्याग भी शोभा देता है। भीतर तो अँगार भरी है ऊपर से त्याग कर दिया तो बात बनती नहीं त्याग अकेला वैराग्य के बिना निकलता नहीं।

जो लोग बीसों वर्ष से घूम रहे हैं बिना कुछ संग्रह किये। वे कहते हैं—"अजी घूमने फिरने में कुछ नहीं है न साधन होता है न भजन न नियमित जीवन। हम तो घूम फिर कर देख चुके। अब तो हमारी इच्छा कहीं एक स्थान पर बैठकर भजन करने की है। जिन दिनों मैं गंगा किनारे घूमता था। एक बहुत ही विरक्त सन्त मिले तितिक्षा और त्याग की लम्बी कहानी है वे मुझे गंगा तट पर एक झाड़ी में बैठे मिले। बड़ी कठिनता से मैं उन्हें कुटिया में लाया। २५। ३० वर्ष पश्चात् अभी थोड़े दिन हुए फिर मिले। त्रिवेणी पर ही दर्शन हो गये। तीर्थराज में सभी कभी न कभी आ ही जाते हैं। अब वे बड़े शिथिल हो गये थे। वृद्धावस्था ने इतनी त्यागी तितिक्षु सन्त को भी नहीं छोड़ा।

शरीर भी रोगी हो गया था। कुछ दिन निवास किया। कहने लगे—"अब तो मैं चाहता हूँ, कहीं एक स्थान पर ही रहूँ। अब घूमने फिरने में बड़ी असुविधायें होती हैं। पहिले जैसे लोगों के भाव भी नहीं रहे भिक्षा देने को जैसे पहिले प्रथा थी वह अब लुप्तप्राय हो गयी है। अब सभी बातें विपरीत सी हो गयी हैं। मैंने कहा—आप यहीं निवास करें। वे बोले—"अब तो भाई तुम महन्त बन गये हो वे पुरानी बातें कहाँ रहीं। एक दूसरे सन्त हैं पहिले वे भी विरक्त रहे होंगे पीछे एक बड़ी गद्दी के अधिकारी हुए सहस्रों शिष्य बनाये लखपती करोड़पति शिष्य हुए यज्ञ उत्सव अनुष्ठान आदि कराये अब वे अपने सब शिष्यों से मिलकर अपना अधिकार बनाकर टाट पहिन कर एकान्त में उत्तरा खण्ड में वास करने की सोच रहे थे। गये या नहीं। पता चला नहीं।"

इससे निष्कर्ष यही निकला, कि जैसे बाहरी वस्तुओं का संग्रह दुखदायी है, वैसे बाह्य त्याग वैराग्य भी दुख और अशान्ति का हेतु है। बिना भीतर के विवेक वैराग्य के बाहरी सभी बातें व्यर्थ हैं। जैसे हम भोजन में नित्य परिवर्तन चाहते हैं, आज दाल मूँगकी बनी है, तो कल अरहर की बने, आज साग परवर आलूका बना है, तो कल किसी अन्य वस्तु का बने। बड़े-बड़े लोगो को चना चबाते और चना, मटर मकई बाजरे की रोटी खाते देखा है। स्वाद बदलने के लिये रुचि परिवतन के लिये वे सभी खाते हैं, उनका भी मन चलता है, आज इसका भी स्वाद लेलें।

मैं जिस मकान में रहता हूँ, उसे छोटी सी कुटी भी नहीं कह सकते न कोई बड़ी भारी कोठी ही। कुटिया और कोठी के बीच की कोठरिया कह सकते हैं। यहाँ

इस स्थान में रहते लगभग एक युग हो गया होगा १० वर्ष तो भागवती कथा को ही प्रकाशित हुए हो गये एक दो वर्ष पूर्व यहाँ डेरा जमाया था तबसे अब तक बड़े परिवर्तन हो गये। संसार परिवर्तनशील है। क्षण क्षणमें परिवर्तन होता रहता है सब धातुयें क्षण भर में बदल जाती हैं, जैसे गंगाजी का जल क्षण क्षण भर में नवीन होता रहता है। प्रवाह में बहता रहता है उसके स्थान पर नया आता रहता है। बाल्यावस्था में वाणी कितनी मधुर कोमल सुहावनी होती है। अंग कितने कोमल होते हैं, प्रौढ़ावस्थामें वे नहीं रहते. किशोरावस्था में दूसरा ही रंग आजाता है, युवावस्थामें तो बाल्यकालका सर्वथा पट परिवर्तित हो जाता है, युवावस्था के पश्चात् शिथिलता आने लगती है, अधेड़ से हो जाते हैं, फिर वृद्धावस्था पदार्पण करती है, इन्द्रियों की शक्ति क्षीण होने लगती हैं, धातुएँ कुपित हो जाती हैं। अति वृद्धावस्था में तो पूरा डोकरा हो जाता है, कमर लचक जाती है, पैर डगमगाने लगते है, बिना लाठी के सहारेके उठ बैठ नहीं सकते। उस डोकरेका यदि कोई बाल्यकाल या युवावस्थाका चिन्ह हो उससे इस पोपले मुँहवाले बूढ़े की सूरत मिलाइये, आकाश पाताल का अन्तर हो जायगा। कोई भी अंग एक समान न मिलेगा। दूर कहाँ जाते हो मेरे ही इन ३५ वर्ष के चित्रोंसे अथर्क चित्रों को मिलाइये कोई कह सकेगा कि ये वही प्रभुदत्तजी है। पहिले ही पहिले जब मैंने श्री अरविन्द घोषका वह स्थूल शरीर और सफेद लम्बी दाढ़ी वाला वृद्धावस्था का चित्र देखा तो मैं पहिचान ही न सका। हम तो सदा से दुबले पतले काली छोटी दाढ़ी वाले चित्र से ही उन्हें पहिचानते थे। वैसे परिवर्तन तो नित्य ही क्षण क्षणमें होता है किन्तु पता कुछ दिन के पश्चात् लगता है, जो नित्य समीप रहते हैं उन्हें पता

भी नहीं चलता और अपने को तो ऐसा लगता है मानों हममें कुछ परिवर्तन हुआ ही नहीं। दुबला आदमी शनैः शनैः मोटा होता है, उसे लगता ही नहीं मैं मोटा हो गया हूँ। दूसरों को बहुत दिन में देखते हैं, तब कहते हैं अरे, तुममें तो बड़ा परिवर्तन हो गया, किन्तु अपने परिवर्तन को अनुभव नहीं करते कि हम क्या थे और क्या हो गये। इसी का नाम अहन्ता है। अहं बदलता नहीं। अहं ही ब्रह्म है, ब्रह्म अपरिवर्तनशील एक रस है।

जब यहाँ रहना आरम्भ किया था, तो मन बहलाने को कुछ पौधे, कुछ फूलकी बेलें लगाली थीं। वृक्षोंसे मुझे स्वाभाविक प्रेम है। लिखते-लिखते जब चित्त ऊबने लगता है तो तनिक बगीचेमें जाकर टहलने लगता हूँ, खिले हुए पुष्पों को देखता हूँ, लटकते हुए फलों को देखता हूँ, चित्त प्रसन्न हो जाता है, खुली वायु लगने से स्फूर्ति आती है, फिर आकर लिखने लगता हूँ। कभी वृक्षोंके पौधों को इधरसे उधर उठाकर रख देता हूँ, किसी को सम्हाल देता हूँ, कैसी भगवान की अनोखी सृष्टि है कैसा खेल है, छोटे से बीजसे कैसे ऐसा वृक्ष बन जाता है, वृक्षोंमें फल कहाँसे लग जाते हैं तुरन्त फूल कैसे निकल आते हैं, उनमें इतनी मीठी सुगन्ध कौन भर देता है, इतने मनमोहक रंगों को कौन चतुर चितेरा निश्चिंतता से बैठकर चित्रित करता रहता है। कुछ समझमें आता नहीं इसी रहस्य को समझने की चेष्टा करता हूँ, किन्तु समझ नहीं पाता।

जब आया था, तब ये फल फूलके पेड़ नहीं थे। पेड़ नहीं थे तो पत्ते तो होते ही कहाँ, फल फूलोंकी तो फिर चर्चा ही व्यर्थ है, पुराण मण्डप के समीप दोचार अस्त व्यस्त वृक्ष थे। सुना था पहिले यहाँ पपीतेके कुछ वृक्ष लगे थे। रात में सेह

(जिसके शरीर पर लम्बे-लम्बे काँटे होते हैं) आकर उनकी जड़
को खोदकर खाजाती थी कोई इसके आस पास पर कोटा नहीं
था। वृक्षोंके लिये पर कोटा, सीमा, मर्यादा अवश्य चाहिये।
जिनके जीवनमें कोई मर्यादा नहीं शील सदाचार की
सीमा नहीं, उनके जीवन के रसको, सदाचारको,
बड़े बड़े. तीक्ष्ण काँटेवाले जन्तु नष्टकर डालते हैं।
एक पर कोटा बनाया गया, सुदृढ़ नहीं ऐसे ही काम चलाऊ।
किन्तु क्षणिक मर्यादा से काम चलने का नहीं वह एक धक्के
में गिर जता है, जीवन बिखर जाता है शील संकोच सदाचार
बच नहीं सकता। मर्यादा प्राचीर सुदृढ़ चाहिये। वही हुआ
बाढ़ आई, गंगाजीने कुटिया के तीनों ओर कृपाकी परकोटा
गिर गया पूरीकी पूरी दीवाल गिर गयी। फिर वज्रलेप (सीमेन्ट)
मँगाया गया सुदृढ़ प्राचीर बनी. वृक्ष लगे, बेलें बढ़ीं। पहिले
सब लोग कहते थे—"अजी यह बड़ी कँकरीली पथरीली ऊबड़
खाबड़ भूमि है इसमें कहाँ फल फूलके वृक्ष होंगे। किन्तु आप
अब आकर देख जाइये, छोटासा सघनसा कैसा सुन्दर बगीचा
लग गया है, भूमि सुगन्धित पुष्पोंसे भरी रहती है, पथमें पुष्प
बिछे रहते हैं। मैं अत्युक्ति नहीं कर रहा हूँ, लेखकों की भाँति
गप्प नहीं मार रहा हूँ सचसच कहता हूँ, कुटी के द्वारसे कथा
मण्डप से कुँए तक पूरे मार्ग के दोनों ओर यूथिका (जूही)
मल्लिका (चमेली) माधवी के लताओंकी सघन कुंजें बनगयी
हैं, लोहे के मुड़े हुए खम्भों के ऊपर चढ़कर उन्होंने मार्गको
आच्छादित कर रखा है। आजकल जब उनमें से टप-टप करते
पुष्प गिरते हैं तो मार्ग पुष्पों से भर जाता है। पारिजात भी
फूलने लगे हैं और वृक्षके नीचे पुष्पका गद्दा सा बिछ जाता है।
इतने पुष्पोंके वृक्ष हैं, कि मनों नहीं तो पंसेरियों पुष्प कोई
चाहे तो निकाल सकता है, किन्तु इतने ऊँचे चढ़े कौन अपने

आप गिरा गिराकर पथमें प्रसरित हो जाते हैं। सब -पुष्पों के तो मुझे नाम भी न याद होंगे :पाटल (कमल) यूथिका (जूही) मल्लिका (चमेली) जाति (बेला) अगर, तगर माधवी रजनीगंधा (रातरानी) पारिजात (हारसिंगार) जया ये तो स्थाई हैं, शेप कितने ही सामयिक पुष्पोंके पौधे लगते हैं। फलोंके वृत्त फलके बाहुल्य से लदे रहते हैं। बड़े-बड़े फलोंसे युक्त पंक्तिबद्ध पपीतोंके वृक्षोंको देखता हूँ, तो चित्त प्रसन्न हो जाता है, अमरूद फलोंके भारसे झुक हुए वायुमें झूमते हुए पृथिवी को चूमते हुए जब प्रयाग के प्रसिद्ध अमरूदोंके वृत्तों को अपने आस पास में देखता हूँ, तो मन मुकुर खिल जाता है, किन्तु फल मिलते नहीं। शुकों के झुंड के झुंड आजाते हैं, कुछ खाजाते हैं कुछ कुतर कुतरकर फेंक जाते हैं, गिलहरियाँ भो कहाँ खोजने जायँ। बन्दर तो यहाँ हैं नहीं कभी कभी एक दो आ जाते हैं, उन्हें भगा दिया जाता है, किन्तु दो पैर के ये बालक बन्दर तो बन्दरों के भो दादागुरु हैं, मैं त्रिवेणी स्नान करने जाता हूँ, तनिक भी कोई गदरा हुआ फल देखा, इधर-उधर दृष्टि बचाई तोड़ लिया भाग गये, किसी दूसरे लड़के ने देख लिया तो उसे भी कुछ देदिये। आश्रमके लड़कों के अतिरिक्त प्रयाग के लोग भी आ जाते हैं, टटके पेड़ पर लगे फलों से किसका मन नहीं मचल जाता।

पुष्पं दृष्ट्वा फलं दृष्ट्वा दृष्ट्वा च नव यौवनाम्।
विजने कांचनं दृष्ट्वा कस्य न चलते मनः॥

सुन्दर पुष्प लगे हों, मन मोहक फल लगे हों, एकान्त में सुवर्ण पड़ा हो, तो किसका मन न ललचा जायगा। सो फल न भी मिले, सन्तोष तो है ही फलवान् वृत्त कुटिया में लगे हैं। गत वर्ष

कोई मूल्य नहीं था, जो चाहता जङ्गलों से काट लाता। अब सबका मूल्य इतना बढ़ गया है, कि तीन चार वर्ष में फूस कुटिया में जितना व्यय लगे उतने में पक्की कुटिया बन जा है आग लगी कुटिया जल गयी, कुछ दीमकों का भोजन हो गय फूस के स्थान पर खपरैल आई अब शनैः-शनैः सब पक्की बन र हैं। हम सच गर्व से कहते हैं हमारी कुटियाँ हमारा कीर्तन भवन अब आप सोचें उसमें हमारा क्या है। यमुनाजी न जाने कहाँ मोटी बालू बहाकर लाती हैं। सगंम के पास उसे छोड़ जाती है मल्लाह नौकाओं में भर भर कर उसे आश्रम में ले आते हैं। फाफामऊ में नीची भूमि है, यहाँ ईंट बनाकर पका लेते है बड़ी मोटरों में भरकर यहाँ आ जाती हैं, बुध के पुत्र महाराज पुरूरवा की यह प्रतिष्ठानपुर राजधानी रही है। न जाने तब से कितने लाख राजा यहाँ हो गये होंगे। अंतिम किसी राजा का यहाँ बड़ा भारी खँड़हर किला पड़ा है, उसमें कोई राजा नहीं रहता। न जाने कबसे उसपर साधुओं का अधिकार है। कहते तो यह हैं कि कोई अबूझ राजा था उसके राज में सब वस्तु टका सेर बिकती थीं अंधेर नगरी अबूझ राजा। टका सेर भाजी टका सेर खाजा। उसी से साधुओं पर यह किला आया। उसके आस पास न जाने कितनी पुरानी ईंटों के रोड़े पड़े हैं। उन रोड़ों से न जाने कितने मकान बन गये, किन्तु ये रोड़े चुकते नहीं वर्षात में नये नये निकल आते हैं। कुछ लोग उन्हें बीन-बीन कर नौकाओं में भरकर आश्रम में ले आते हैं। पहाड़ के पत्थरों को पीसकर पास ही कहीं वज्रलेप (सीमेन्ट) बनता है, रेल के डिब्बों में भरकर यहाँ आ जाता है। कुछ लोग श्रमिकों के लि पैसे भेज देते हैं। सब ईंट पत्थर जोड़ जाड़कर एक भवन ब जाता है, उसमें बहुत खोजा मेरा नाम का कोई मसाला नह

जाता । न मिलाने पर भी उसमें ममता हो ही जाती है यही मायेश की माया है । यही सीतापति का खेल है ।

मैंने कहा—"भाई पक्के मकानों में उतनी सात्विकता नहीं रहती । प्राचीन ऋषि मुनियों की सी एक कच्ची कुटी अपने श्रमदान से बनाओ । पीत वसनधारी वटु हँसते-हँसते इस काम में जुट गये मैंने कहा—इसमें ईंट एक भी न लगाओ केवल गङ्गाजी की रज से ही बनाई जाय । गङ्गाजी की चिकनी मिट्टी के सूखे ढेले लड़के भर भरकर लाये कुटिया को उत्तर ओर प्राचीर के अन्तर्गत दो नीम के सघन वृक्ष हैं उनके नीचे ही बनाने का निश्चय हुआ । पूर्व से पश्चिम तक बराबर तीन यूथिका के वितान हैं । चार चार खम्मे बनाकर उनपर यूथिका की सघन लतायें चढ़ाई गयी हैं जो नीम के नीचे वितान हैं उसे ही मुख्य द्वार मानकर उसी के बीच में बनी । पहिले बाँसों की टट्टर की एक कुटी बना ली उसके ऊपर से गङ्गाजी की मिट्टी ल्हेस दी । पहिले उस पर फूँस का छप्पर डाला था उसे महीने भर में ही दीमकों ने आहार बना लिया विवश होकर खपरैल डालनी पड़ी । छोटी सी सुन्दर सी मुनमुनी सी कुटिया बन गयी । गो सेवक मौनी बाबा गौओं का गोबर लाये गङ्गारज मिलायी उससे ल्हेस दी ८-९ हाथ लम्बी और ५-६ हाथ चौड़ी कुटी बन गयी बीच में एक छोटी भीत देकर डेढ़ दो हाथ चौड़ी एक छोटी सी प्रसाद पाने को पृथक् कोठरी हो गयी । उत्तर दक्षिण छोटी छोटी किवाड़ लगा दी । कुटिया के चारों ओर सुदर्शन के पौधे लगे हुए पूर्व की ओर छोटी सी खिड़की दक्षिण की ओर यूथिका वितान के किनारे मोर श्री वकुल का लम्बा पतला वृक्ष । उधर प्रधान द्वार की पश्चिम ओर दूसरा यूथिका सघन वितान

मिट्ठा नीबू और अमरूद के सघन वृत्त उत्तर की ओर दे पारिजात के वृत्त छोटा सा आँगन और पक्की पुरानी प्राची देने से यह कुटिया बड़ी ही मनोहर सात्विक लगती है, चारों ओर हरे भरे वृत्त यह एक सजा सजाया पुष्प गुच्छ सा प्रतीत होता है। यह गोवर से लीपी जाती है। मध्याह्नोत्तर लिपी पुती स्वच्छ कच्ची कुटी में बैठकर प्रसाद पाता हूँ तो मन में कितने सात्विक भाव उत्पन्न होते हैं। जो बड़े बड़े प्रसादों में रहते हैं वे भी कहते हैं—वाह ! कैसी प्यारी प्यारी कुटी है। पाठक यह न कहें यह क्या भूमिका लिख रहे हैं अपनी कुटी को प्रशंसा कर रहे हैं ? नहीं वह रामकुटी है रामजी की प्रशंसा कर रहा हूँ रामजी की सभी वस्तुएँ प्रशंसा के ही योग्य हैं। आपको मेरा विश्वास न हो तो कभी आकर उसे देख लें। चित्रों में जैसी प्राचीन ऋषि आश्रमों में कुटिया की कल्पना करके चित्रित की जाती हैं वैसी ही बनाई है किन्तु रामकुटी तो है मैं शरीर से उसमें जाता हूँ, किन्तु वास्तव में मेरा उसमें प्रवेश नहीं। क्यों प्रवेश नहीं जी ? ऐसी सुन्दर कुटिया ऐसी सुगन्धित उसकी किवाड़ें फिर उसमें तुम घुस क्यों नहीं सकते ? घुसूँ कैसे उसमें ताला जो लगा है। "ताले को खोल क्यों नहीं लेते ? ताला खुले तब न, ताला तो ताली से ही खुलता है ताली तो मेरे पास नहीं है ताली तो किसी नटखट ने अपना रखी है। ताली तो किसी काले रङ्ग के कृष्ण के पास है। सीतापति राम की कोठरी की ताली कृष्ण के पास कैसे पहुंच गयी जी ?" भैया ! अपना अपना दाव है जिसका दाव लग गया। जिसने हथियाली सीतापति मर्यादा के पालक की कोठरी की ताली कृष्ण के अधिकार में आ गयी वह कृष्ण एक तो स्वयं ही चोर जार शिखामणि है फिर उसे लोगोंको खिजाने में चिढ़ाने में छटपटाने में रुलाने में तड़पाने में आनन्द आता है। इसीलिये

कोई कितनी भी अनुनय विनय करो, कोठरी खोलता ही नहीं मुसकरा देता है।

इस अन्तःकरण की सुन्दर कोठरी में मायापति सर्वत्र समान भाव से रमन करनेवाले राम बैठे हैं, किन्तु भीतर से किवाड़ बन्द कर रखी है, अहंता ममता ये ही दो किवाड़ें हैं ये दो ऐसी सुगंधित चन्दन की किवाड़ें हैं कि सभी प्राणी केवल इनकी सुगन्ध में ही फँस जाते हैं। अहंता और ममता ये ही किवाड़ें हैं। मैं इतना प्रतिष्ठित हूँ, तपस्वी हूँ, योगी हूँ, सिद्ध हूँ यह इतनी भारी सुगन्ध है कि मनसे निकलती ही नहीं। यह ममता डाइन कहीं परोपकार का रूप रखकर, कहीं परमार्थ का बाना पहनकर, कहीं लोक संग्रह का रूप रखकर ऐसी मोहक बनकर आती है, कि कुछ पूछिये ही नहीं। ये 'ईंट पत्थर क्यों इकट्ठे कर रहे हो जी ?" इनसे सत्सङ्ग भवन बनेगा' परोपकार का काम है।" मानों परोपकार का ठेका इन्होंने ही ले रखा है। बिना सत्सङ्ग भवन बने सत्सङ्ग हो ही नहीं सकता। इसमें छिपी हुई ममता है, जो दूसरे नाम से प्रकट की जाती है नहीं तो सच्चे सन्त का तो यह शरीर ही सत्संग भवन है, वह जहाँ भी बैठेगा, वहीं परोपकार करेगा, वहीं अपनी सन्निधि से जीवों को कृतार्थ करेगा उसे ईंट पत्थर एकत्रित करनेकी आवश्यकता न रहेगी। मैंने अभी कहीं एक स्त्री सन्त की कहानी पढ़ी थी। उनका जन्म किसी दास वंश में तब हुआ था जब दासों को बेचने की प्रथा थी वे शरीर से अत्यन्त ही सुन्दरी थीं, किन्तु पूर्वजन्म की कोई उच्चकोटि सिद्धा थीं। किसी ने उन्हें एक वेश्या के हाथों बेच दिया। वे वेश्या के घर रहने लगीं। वेश्या के यहाँ जो आते उनसे वह मोलभाव तै करके द्रव्य लेकर इनके समीप भेजतीं। ये उस आदमी से कहतीं— "पहिले तुम स्नान करके स्वच्छ वस्त्र पहिन लो।" वस्त्र भी ये अपने पास से दे देतीं। स्नान करके ये कहतीं—"अब मेरे साथ

कुछ देर प्रार्थना कर लो।" तब ये उसे साथ बिठाकर गद्गद कंठ से प्रार्थना करतीं। इनकी हार्दिक प्रार्थना के प्रभाव से उसका कामभाव कपूर की भाँति उड़ जाता। फिर ये उसे उपदेश करतीं उपदेश का ऐसा प्रभाव पड़ता कि वह इनके चरणों में प्रणाम करके चला जाता और फिर कभी भी वेश्या के यहाँ न जाता इस प्रकार एक वर्ष हो गया।

इनकी बूढ़ी वेश्या ने सोचा—"यह क्या बात है, जो यहाँ एक बार आ जाता है, फिर कभी लौटकर नहीं आता। ऐसा पहिले तो कभी होता नहीं था। यह कोई जादू टौना तो नहीं जानती।" यही सोचकर वह एक दिन छिपकर बैठ गयी और इनकी गति विधि का निरीक्षण करती रही। एक व्यक्ति आया। इन्होंने उसे स्नान कराया फिर उसके साथ प्रार्थना की। प्रार्थना तो भीतर हो रही थी, वेश्या बाहर बैठी रो रही थी। जब उन्होंने उपदेश दिया और कहा—"तुम हीरा जैसे अपने सदाचार रूप रत्न को मोरी में फेंकने यहाँ क्यों आये हो, अरे, उन घटघटवासी प्रभु से प्यार करो इस मलमूत्र की थैली में हाड़ मांस की देह में तो कौए गीदड़, गिद्ध, कुत्ते तथा मल के कीड़े रमण करते हैं, यह हीरा जैसा जन्म इन तुच्छ कार्यों के लिये थोड़े ही है। मनुष्य शरीर बार बार नहीं मिलता।"

अब तो वेश्या की आँख खुलीं उसका भी हृदय पसीज गया। जाकर तुरन्त उनके पैरों पड़ गयी और बोली—"देवि! मैंने आप को पहिचाना नहीं। आप तो परम साध्वी हैं, भगवत् स्वरूप हैं, मुझे क्षमा करो और आप अब जहाँ चाहो, तहाँ जाओ। मुझसे बड़ा अपराध हुआ।"

हँसकर उन साध्वी ने कहा—"जो हुआ अच्छा ही हुआ, किन्तु तुमने मेरे उपदेश क्रम तो समाप्त ही कर दिया।"

सच्चे सन्त की वाणी ही अमोघ है, उसे अन्य उपकरणों की आवश्यकता नहीं रहती। जो हमारे जैसे ऊपरी वेषधारी-बनावटी--नाममात्र के सत्सङ्गी हैं, वे तो सत्सगं को वृत्ति का एक उपकरण बनाकर उसके द्वारा अपनी इच्छाओं-वासनाओं की-पूर्ति करते हैं अहंता ममता को बढ़ाते हैं, इसी से सीतापति की कोठरी की किवाड़ें बन्द हो जाती हैं। आप कहेंगे—"एक धक्का दे दो खुल जायँगी ?" धक्का तो तब दें जब ताला खुले बन्द ताले में लाख बार धक्का दो खुलने की नहीं। उसे तो मुरारी ही चाहें तो खोल सकते हैं। "यह मुरारी कौन ?" अजी, उस कृष्ण का ही नाम मुरारी है। मुरा नाम की एक राक्षसी है डाइन। उसका नाम माया भी है, तृष्णा भी है। उस तृष्णा के शत्रु हैं यह मुरारी। वही इसे मार सकता है पछाड़ सकता है। ताला भी एक ऐसी विचित्र धातु का बना है कि इसमें दूसरी ताली लग ही नहीं सकती। उस धातु का नाम है "प्रेम" प्रेम को पिघलाकर घनीभूत करके इन किवाड़ों में जड़ दिया है। हम संसारी लोग अहंता ममता को प्रेम के नाम से पचा जाते हैं। मुझे शरीर से प्रेम है, मुझे पुष्पों से, पौधों से अमुक स्वजन बन्धुबान्धवों से प्रेम है। मोह ममता को अज्ञानी प्रेम संज्ञा दे देते हैं। ये कपाट कृष्णकृपा के बिना खुल नहीं सकते। ये मुरारी ही कृपा करें तब कोठरी खुल सकती है, तभी योगिजन जिनमें रमते हैं उन राम के दर्शन हो सकते हैं, तभी इस कुटिया की सार्थकता है, तभी इस कुटिया की महत्ता है।

सीतापति की कोठरी, चन्दन जड़ी किवार।
तारो लाग्यो प्रेम को, खोलो कृष्ण मुरार॥

हे मुरारी क्या इस ताले को खोल दोगे, क्या इन किवाड़ों को पृथक् कर दोगे ? क्या सीतापति का दर्शन करा दोगे ? तुम्हारी

जैसे इच्छा तुमसे बलप्रयोग तो हो नहीं सकता। तुम्हारी की प्रतीक्षा है, प्रारब्धकर्मों को भोग रहे हैं? तुमको हृदय वाणी से, शरीर से नमस्कार कर रहे हैं, तुम्हारी बार-बार उन्हीं शब्दों से स्तुति प्रार्थना कर रहे हैं, एक ही सम्बोधन बारम्बार दुहरा रहे हैं। संसारी लोग इनमें पुनरुक्ति दोष बता देंगे, किन्तु जिसके हृदय में भयङ्कर फोड़ा हो गया है, वह बार म्बार एक ही शब्द कहेगा "हाय हाय!" चिल्लायेगा। तुम ही लाख बार उससे कहो—"अरे, एक बार हाय हो गयी, बार हो गयी। उसी एक शब्द की रट क्यों लगाये हुए हो, वह आपकी बात सुनेगा ही नहीं, उसी को बार-बार रहेगा। सो हे मुरारी! जब तक तुम इस सीतापति की कोठरी किवाड़ न खोलोगे तब तक तुम्हें हम बारबार उन्हीं उन्हीं नामों से पुकारते रहेंगे भीतर बैठा हुआ सीतापति भी तो कुछ सुनता होगा, कभी तो उसके कान में भनक पड़ेगी ही—

राम राम रटते रहो, जब लग घट में प्रान।
कबहूँ दीनदयाल के, भनक पड़ेगी कान॥

छप्पय

हे चञ्चल! हे चोर! ओर मेरी हू हेरो।
नाहिँ माने मदमत्त मलिन माधव मन मेरो॥
कबतैं रह्यो पुकारि द्वार तुमरे प्रभु आयौ।
खुलैं न कृष्ण किवार हियो अतिशय घबरायौ॥
हृदय ध्यान नहिँ हरि करै, बानी बिनती तैं डरै।
कैसे तब दरसन मिलै, दण्ड सरिस तन नहिँ परै॥

वामन द्वादशी—
संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर (प्रयाग)

विनीत—
प्रभुदत्त

ब्रह्माजी द्वारा-भगवत्स्तुति (३)

(२१)

पुंसामतो विविधकर्मभिरध्वराद्यै—
दानेन चोग्रतपसा व्रतचर्यया च ।
आराधनं भगवतस्तव सत्क्रियार्थो
धर्मोऽर्पितः कर्हिचिद्ध्रियते न यत्र ॥*

(श्रीभा० ३ स्क० ९ अ० १३ श्लो०)

छप्पय

सब साधन को सार सकल प्रति दया दिखावैं ।
विविध दान, तप, यज्ञ दया करि सफल कहावैं ॥
जगके कारन, करन, काज सब आपु कहावैं ।
क्रीड़ा केशव करें करमवश सबनि भ्रमावैं ॥
अन्त समय महँ, अवश हूँ, नाम उचारन जे करें ।
बन्दौं तिनिके पद पदुम, जिनि नामनि लै जन तरें ॥

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! भगवान् ही सृष्टि, स्थिति और प्रलय के एकमात्र कारण हैं, इसी बात को निरूपण करते हुये ब्रह्माजी अपने तृतीय मुखारविन्द से भगवान् की स्तुति करते हुए कह रहे हैं।"

हे अनन्त ! आपके गुण अनन्त हैं, कर्म अनन्त हैं, नाम अनन्त

---

* स्तुति करते हुए ब्रह्माजी कह रहे हैं—"प्रभो ! इसलिये मनुष्यों के सत्कर्मों का यही एकमात्र फल है कि वह विविध प्रकार के कर्मों द्वारा यज्ञ, दान, उग्र तपस्या तथा व्रतादिकों के द्वारा आपकी आराधना करे, क्योंकि आपको अर्पित किया हुआ धर्म कभी क्षीण नहीं होता ।

है तथा लीलायें अनन्त हैं। कोई उनकी गणना करना चाहे तो असं भव है, आपके समीप जो भी वस्तु जायगी वही अनन्त अक्षय ब जायगी। हे मायेश! माया के चक्करमें पड़ा जीव भूख, प्यास, वात. पित्त, कफ, शीत, उष्ण, वायु वर्षा, काम, क्रोध तथा लोभ आदि के कारण दुखी रहता है। वह सुख की खोज में है, सुख पाने के लिये भाँति भाँति के कर्म करता है, उनसे सुख के स्थान में दुःख ही मिलते हैं। वह संसार बन्धन से जितना ही छूटना चाहता है, कर्म बन्धन उसे उतना ही जकड़कर बाँध लेते हैं। कर्मों का फल या तो स्वर्ग है या नरक। दोनों ही बन्धन हैं, पाप कर्म करने से नरक की प्राप्ति होती है, जब नरक की यातनाओं से पापों का दंड यमयातनाओं के द्वारा क्षीण हो जाता है, तो जीव सूकर कूकर अधम योनि में फिर मर्त्यलोकमें जन्म लेता है, इसी प्रकार पुण्य कर्म से स्वर्ग में स्वर्गीय सुख भोगकर पुण्यक्षीण होने पर उसे पुनः यहाँ आकर जन्ममरण का दुःख उठाना पड़ता है। अतः बन्धन पुण्य पाप दोनों ही प्रकार के कर्मों से नहीं कटता।

सुखकी प्राप्ति के हेतु पुरुष विविध प्रकारके यज्ञयाग करता है, देवताओं की आराधना करता है, उन्हें हवि देता है, किन्तु उससे भी इस लोक के मनोरथ अथवा स्वर्गीय सुख ही मिलते हैं। यदि यज्ञ में भी कहीं विधि विधान का वैपरीत्य हो गया तो विधिहीन यज्ञ करने वाले का तत्काल विनाश हो जाता है, पुण्य के स्थान में पाप हो जाता है, इसीलिये शास्त्रकारों ने कहा है "नास्ति यज्ञ समोरिपुः" क्योंकि विधि विपरीत होने पर यज्ञ शत्रु से भी अधिक कष्टकर सिद्ध होता है। हे यज्ञेश! सुखप्राप्ति के लिये बड़े दान किये जाते हैं। दान से इस लोक में यश मिलता है, परलोकमें स्वर्गीय सुख मिलते हैं, किन्तु दान का फल भी क्षयिष्णु है, कितना भी दान करो दान के द्वारा भले ही अक्षय

लोक तक पहुँच जाओ, किन्तु उसका भ एक दिन अन्त होगा ही दान देते देते तनिक असावधानी हो गयी तो देवता न बनकर गिर गिट—कृकलास्व-बनना पड़ेगा। अन्नदान न किया तो ब्रह्मलोक में भी भूख सतावेगी और अपना मृतक शरीर ही खाना पड़ेगा। अतः दान से भी नित्यसुख की सम्भावना नहीं है।

हे दाता! कठिन तपस्याओं का फल भी उत्तम लोकों की प्राप्ति है। तपस्या करने में कितना कष्ट, फिर उसमें कितने विघ्न, देवता तथा देवताओं के राजा इन्द्र किसी को तपस्या करते देखते हैं, तो कितने चिन्तित हो जाते हैं। उसके तप में विविध भाँति के अन्तराय उपस्थित करते हैं।

हे तपोमूर्ति! विविध प्रकार के व्रतों द्वारा सुख चाहें तो शरीर को सुखाना पड़ता है, भूख प्यास को सहन कर उपवास करना पड़ता है, इन सब का भी फल स्वर्ग ही है व्रतच्युति हुई तो पुण्य के स्थान में पाप लग जाता है। इन सकाम कर्मों में पग पग पर भय बना रहता है, विधि विधान पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

हे नाथ! यदि ये ही शुभ कर्म, यज्ञ, दान, तप तथा व्रतादि आपके निमित्त-निष्काम भावना से-किये जायँ आप की प्रसन्नता ही एकमात्र उद्देश्य हो, इन कर्मों का समस्त फल आपको ही अर्पण कर दिया जाय, तो वह अक्षय हो जाता है, उसका कभी क्षय नहीं होता, नाश नहीं होता, अन्त नहीं होता। वह अक्षय, अविनाशी तथा अनन्त बन जाता है। शुभ कर्मों द्वारा आपकी आराधना करना और उसे आप को ही अर्पण कर देना, कर्मों का यही एकमात्र उत्तम से उत्तम फल है। अतः हे प्रभो! समस्त कर्म आपकी प्रसन्नता के ही निमित्त हों।

हे ज्ञान स्वरूप ! आप निरन्तर ही अपने स्वरूप के प्रकाश से अज्ञान अंधकार को नाश करने वाले हैं आपको नमस्कार है। आप अपने प्रताप से भेदभ्रम रूपी पेय को पान कर जाते हैं, ऐसे आपके स्वरूप को नमस्कार है। हे परम पुरुष ! आप समस्त ज्ञान के एकमात्र आश्रय हैं, आप सूक्ष्मातिसूक्ष्म बुद्धि द्वारा ही जाने जा सकते है, आपकी हम वारम्बार वन्दना करते हैं। हे परमेश्वर ! इस सृष्टि की उत्पत्ति आपके ही अधीन है, आपके बिना ये पृथक् पृथक् स्वभाव के अधिष्ठातृ देव सृष्टि करने में समर्थ ही नहीं हो सकते, अतः आपके पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है। हे पालक प्रभो ! सृष्टि का पालन भी आपके अधीन है। आप नानावतार लेकर असंख्यों अवतार धारण करके इस बनी हुई सृष्टि का पालन पोषण, प्रीणन, लालन तथा संरक्षण करते रहते हैं। ऐसे आपके पालक स्वरूप को प्रणाम है। हे विश्वनाथ ! हे संसार संहारी ! काल पाकर आप ही अपनी बनाई सृष्टि का संहार भी करते हैं। लोक की कहावत तो यह है, कि अपने लगाये हुए अपने बढ़ाये हुए विष के वृक्ष को भी न काटना चाहिये। किन्तु आप इस इतने बड़े अपने लगाये, अपने पाले पोसे विश्व वृक्ष को क्षणभर में काटकर शेष की शैया पर सुख से सो जाते हो. आपकी लीला आप ही जानों। हम तो केवल आपके पादपद्मों मे प्रणाम ही कर सकते हैं। आप माया के द्वारा एक कमनीय क्रीड़ा कानन बना लेते हो, उसमें क्रीड़ा करते हो, विहार करते हो, मनोविनोद करते हो, खेलते हो। मनमें आ जाती है तब उसे बिगाड़कर सो जाते हो। बालककी भाँति खेलना और सोजाना ये ही आप के दो काम हैं। सो जाना तो एक उपलक्षण मात्र है, आपतो नित्य शुद्ध बुद्ध सदा प्रबुद्ध हैं। आपमें सोना जागना बनता ही नहीं। ऐसे आप परमेश्वर के पादपद्मों मे पुनः पुनः प्रणाम है।

हे हर ! आप समस्त पापों को हर लेते हो। हे

अजन्मा ! निर्गुण निराकार अशरीरी होने पर भी आप साकार शरीर रख लेते हो। अनामी होने पर भी अपने अनन्त नामों को विख्यात कर देते हो। निर्गुण होने पर भी अनन्त गुणों को प्रकटित करते हो। कर्म रहित होने पर भी कर्म करके दिखा देते हो। अवतार धारण करके तो आप अनन्त जीवों का उद्धार करते ही हैं। अवतार काल में आपकी कितनी सामर्थ्य है उसे समझने में हम सर्वथा असमर्थ हैं। किन्तु हम तो केवल आप अनामी के एक नाम में ऐसी सामर्थ्य देखते हैं कि मरते समय कैसे भी भाव में, अभाव से, विवश होकर, हठ पूर्वक, प्रसंग वश एक वार भी आपके नाम का उच्चारण करले, तो उसके समस्त पाप जल जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं, और वह सर्वथा विशुद्ध बनकर विमुक्त बन जाता है। माया के चक्कर से छूट जाता है। आपके अति दुर्लभ परम पदको प्राप्त कर लेता है।

हे महामहिम ! आपके नाम लेने में भी कोई नियम नहीं बन्धन नहीं, विधि नहीं, निषेध नहीं। कैसे भी, कोई भी, कैसा भी, आपका नाम भर लेले। आप अवतार धारण करते हैं यह विडम्बनामात्र है, अनुकरण ही कहा जायगा। आप अनवतारी का कोई अवतार सम्बन्धी नाम ही लेले। जैसे हे नृसिंह ! हे प्रह्लादार्तिहर ! हे कौशिल्यानन्दवर्धन ! हे दशरथनन्दन ! हे जानकीजीवन ! हे क्षत्रियान्तक ! हे उपेन्द्र ! हे देवकीनन्दन ! हे वासुदेव ! हे राधारमण ! हे गोपीजनवल्लभ ! हे कंशारि ! हे पूतनाप्राणहारी ! हे वृन्दाविपिनविहारी ! इसी प्रकार अवतार सम्बन्धी कोई भी नाम लेले।

अवतार सम्बन्धी नाम न ले तो उन निर्गुण का गुण सम्बन्धी ही कोई नाम लेले। जैसे हे भक्तवत्सल ! हे दीनबन्धो !

हे दयासिंधो ! हे अशरणशरण ! हे शरणागतप्रतिपाल आदि जो भी आपका गुण उसे प्रभावित कर सके उसी द्वारा आपको पुकारे।

गुण सम्बन्ध से न ले तो अवतारों में जो जो कार्य कि हैं, उन कार्यों के सम्बन्ध से ही नाम बनाकर या प्रसि नामों को लेले। जैसे हे गो ब्राह्मण प्रतिपालक ! हे सुररक्षक हे असुरारी ! हे रावणारी ! हे मुरारी ! हे गोवर्धनधारी ! रासविहारी ! हे माखन चोर ! हे गोपी वस्त्रापहारी ! हे राधाचि चोर ! हे अर्जुन सारथी ! हे पांडव प्रिय !

इच्छा से भी नहीं, विवश होकर किसी के नाम के व्या से ही जो रूप कभी ध्यान न रखकर केवल आपके नाम व ही पुकारता है, वह भी तत्काल जन्म जन्मान्तरों के किये हु पापों से विमुक्तबनकर अन्त समय में उच्चारण मात्र से ही आ के पद को प्राप्त कर लेता है, ऐसे परमपद प्राप्त कराने वाले पर मेश्वर के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

हे सबके आदि कारण प्रभो ! आप ही इस वृक्ष के बीज है और अपनी ही इच्छा से वृक्ष रूप में परिणित हो जाते हैं। आप अकेले ही बीज से अंकुर बन जाते हैं। उस अंकुर में से ब्रह्म विष्णु और महेश नामकी तीन शाखायें निकल आती हैं, फिर उन शाखाओं में से भी मनु प्रजापति, देव असुर, ऋषि, मुनि रूपी उपशाखायें फूट जाती हैं। उनमें से भी ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र, अन्त्यज, म्लेच्छ, आर्य, अनार्य रूपी छोटी-छोटी शाखायें हो जाती हैं, उनमें भी असंख्यों योनियों के जीव रूपी पत्ते निकल आते हैं, किन्तु ये सब हुए हैं एक ही अंकुर से। एक ही अंकुर विश्व वृक्ष रूप में हो गया है, ऐसे विश्ववृक्ष रूप आपके चरणारविन्दों में बारम्बार नमस्कार है।

हे विश्व को कलय कर्ता देव! विश्व को घुमानेवाला काल आप ही रूप है। काल रूप से आप ही विश्व ब्रह्माण्डमें व्याप्त है। पने अपनी वेदरूपी वाणी से जीवों को शिक्षा दी है, कि मेरा न ही सार है यही जीवों का प्रधान कर्तव्य है। जो पुरुष आप बताये हुये मार्ग से नहीं चलते, आप के पूजन रूप पुण्य कार्य नहीं करते, उसके करने में प्रमाद करते हैं असावधानी बर्तते हैं, दासीनता दिखाते हैं, तो आप उनकी जीवनाशा को निरन्तर टते रहते हैं। वे भले ही अपने कार्य में असावधान रहें, किन्तु प सदा सर्वदा सावधान बने रहते हैं ऐसे अत्यन्त बलवान् काल रूप आप परमेश्वर के पादपद्मों में प्रणाम हैं। समय रूपसर्वेश्वर नमस्कार है।

हे विश्व नियामक! सम्पूर्ण विश्व में आपका ही आतंक है। पके ही भय से सम्पूर्ण भूत अपने-अपने कार्यों में तत्पर रहते। देवगण आपके ही भय के कारण अप्रमत्त सावधान होकर पने-अपने पदों पर प्रतिष्ठित होकर अपने उत्तर दायित्व को भाते रहते हैं। वायु आपके ही भय से चलता रहता है, सूर्य आपके ही भयसे निरन्तरचलते रहते हैं। पृथिवी आपके ही भयसे मती रहती है। इन्द्र आपके ही भयसे वर्षा करते हैं, यम आपके भय से दंड देते हैं। समुद्र आपके ही भय से स्थिर रहते हैं। संसार में छोटी बड़ी आयु वाले अगणित जीव हैं। किन्तु वे सभी आपसे भयभीत रहते हैं। बहुत से जीव एक त्रुटिमें ही जन्म लेते , दूसरी त्रुटि में मर जाते हैं,आपका भय उन्हें भी लगा ही रहता । सौ त्रुटिका एक वेधहोता है, और तीन वेध का एकलव, होता । तीन लव का एक निमेष होता है। जितने काल में पलक गिरता और उठता है उतने काल का नाम निमेष हैं। हे नाथ! बहुत से जीवों की आयु एक वेध बहुतों की लव और अनेकों की निमेष की होती है तीन निमेष का एक 'क्षण' होता है। बहुत से जीव क्षण

भर में ही जन्मते और मरते हैं। पाँच क्षण की एक काष्ठा और पन्द्रह काष्ठा का 'लघु' कहलाता है। पन्द्रह लघु की एक नाड़िका और दो नाड़िका का एक मुहूर्त और ६ या ७ नाड़िका का एक प्रहर होता है और आठ प्रहर का मनुष्यों का एक दिन होता है। बहुत से जीवों की इतनी ही आयु होती है। बहुत से जीव एक दिन में अनेक बार जन्म ले लेते हैं अनेक बार मर जाते हैं। पन्द्रह दिन का एक पक्ष और दो पक्ष का महीना होता है। २ महीने की एक ऋतु और ६ ऋतु का एक वर्ष होता है। बहुतों की परमायु दिन, पक्ष, ऋतु, मास अथवा वर्ष दिन की होती है, बहुत से इतने समय में अनेक योनियों में घूम आते हैं, किन्तु इन सब को काल स्वरूप आपका सदा भय बना ही रहता है। काल बली के आगे किसी की नहीं लगती। आपके भय से सभी थर-थर काँपते रहते हैं। मनुष्यों की अधिक से अधिक आयु सौ वर्ष की मानी गई है, मनुष्य अपने को बड़ा बुद्धिमान बताता है अपने को अत्यन्त निर्भीक समझता है। यूथपति हाथियों को वश में करके उनपर चढ़ जाता है, सिंहों को पछाड़ देता है, वह मनुष्य भी कालबली के भय से भ[illegible] होकर काँपने लगता है। आपका काल स्वरूप ही प्रभो! स[illegible] का भक्षण कर जाता है। मनुष्यों का एक वर्ष देवता के एक दिन के बराबर होता है। ऐसे ३६० दिनों का देव का एक दिव्य वर्ष होता है, ऐसे दिव्य वर्ष जब सहस्र बार बीत जाते हैं तो एक चतुर्युगी होती है। ऐसी युगी जब सहस्र बार बीतती हैं तो नाथ! मुझ ब्रह्मा [illegible]

एक दिन होता है। मेरे तीन सौ साठ दिनों का ब्रह्मवर्ष होता है। ऐसे ५० वर्ष बीतने पर मेरा पूर्वार्ध और दूसरे पचास होने पर उत्तरार्ध कहलाता है। इस प्रकार मेरी भी परमायु दो परार्ध की ही है। मैं ही संसार में सबसे बड़ी आयु वाला माना जाता हूँ, किन्तु हे भयभंजन! दो परार्ध पर्यन्त रहने वाला तथा सबसे श्रेष्ठ, सबसे उत्तम, सबसे उच्च, सबसे वन्दनीय सत्य लोक में निवास करने वाला, सबको उत्पन्न करनेवाला मैं भी आपसे सदा भयभीत बना रहता हूँ। मुझे भी अपनी आयु समाप्त होने की शङ्का बनी रहती है। मैं भी आपकी प्राप्ति के लिए निरन्तर घोर तपस्या करता रहता हूँ, ऐसे अधियज्ञ स्वरूप आप परमात्मा को बारम्बार नमस्कार है। शतशः प्रणाम है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! ब्रह्माजी का तीसरा मुख जब इस प्रकार स्तुति करके चुप हो गया, तो चतुर्थ मुख ने भी अपने को कृतार्थ करने के लिये अपने अस्तित्व को सार्थक बनाने के निमित्त जैसे भगवान् की स्तुति की उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।

छप्पय

बन्दौं तरुवर रूप स्वयं जो जगजनि जावैं।
उतपति थिति लय हेतु तीन शाखा फैलावैं॥
बन्दौं काल सरूप जीव जे करम करे कटु।
तिनि जीवन की आश मूलकाटन में जो पटु॥
जिनि के भय तैं और का, जगवन्दित हौ हूँ डरूँ।
तिनि प्रभु के पद पदुम महँ, बार-बार बन्दन करूँ॥

पद

वन्दौं बार बार बनवारी।
बीज रूपतैं वृक्ष बने हरि, हर, अज, शाखाधारी ॥१॥ वन्दौं०
जाके भयतैं थर थर काँपैं, रवि, शशि, सुर, नर, नारी।
औरनिको का भलो चलाई, डरिहौं उतपति कारी ॥२॥ वन्दौं०
जो न भजैं भयभंजन भगवन्, तुमकूँ खल कुविचारी।
तिनिको जीवन आशा सबरी, काल रूप संहारी ॥३॥ वन्दौं०
भवभयहारी चरननि वन्दौं, भगतनि विपति विदारी।
प्रभु दरवाजे अड़िकें बैठ्यो, माँगै भीख भिखारी ॥४॥ वन्दौं०

ब्रह्माजी द्वारा भगवत् स्तुति (४)

(२२)

तिर्यङ्‌मनुष्यविबुधादिषु जीवयोनि-
ष्वात्मेच्छयात्मकृत सेतुपराप्सया यः ।
रेमे निरस्तरतिरप्यवरुद्धदेह-
स्तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय ॥*

(श्रीभा० ३ स्क० ९ अ० १९ श्लो०)

छप्पय

अंडज पिंडज जीव चतुरविधि नाथ ! बनावैं ।
तिनिमहँ लै अवतार अलौकिक सुख सरसावैं ॥
सब जग रचि पचि फेरि उदर धरि सोवैं सुखतें ।
करि कमलासन मोइ वेद बोले मम मुखतें ॥
क्रीड़ा हित कौतुक कलित, करे कृपामय काम हैं ।
तिनि प्रभुपद पाथोज महँ, पुनि पुनि पुन्य प्रनाम हैं ॥

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! ब्रह्माजी अपने चौथे मुख से स्तुति करते हुए कहते हैं—"हे प्रभो ! आप विरुद्ध धर्माश्रय हैं। निद्रा अविद्या का कार्य है, तमोगुण के आधिक्य से निद्रा आती है, आप निद्रित से भी प्रतीत होते हैं, किन्तु तामिस्र, अन्धतामिस्र

---

* स्तुति करते हुए ब्रह्माजी कह रहे हैं—"हे प्रभो ! जिन आपने अपनी रचित पशु, पक्षी, मनुष्य तथा देव आदि योनियों में स्वेच्छा से ही अवतार धारण करके धर्म संस्थापनार्थ अनासक्त भाव से विविध क्रीड़ायें की हैं, उन आप पुरुषोत्तम प्रभु के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है ।

तम, मोह, और महामोह इन पाँच प्रकार की अविद्याओं के वशीभूत भी नहीं होते। सृष्टि के अन्त में सम्पूर्ण चराचर जगत को उदरस्थ करके अपने में लीन करके, सुखपूर्वक सो जाते हैं, स्वयं क्या सोते हैं, समस्त जीवों को निद्रा सुख का अनुभव कराते हैं, आपके जितने भी कार्य हैं, सभी लोक कल्याण के निमित्त, परोपकार के लिये, दूसरों को आनन्दित करने के लिये होते हैं। आप सोते भी कहाँ हैं, प्रलयकालीन प्रबल पयोनिधि के मध्य में। जहाँ भयंकर जल की तरङ्ग मालायें हहर हहर करके हहराती रहती हैं, सोते भी किस पर हैं, सर्प के सुन्दर चिकने शरीर पर। मनुष्यों के घर के भीतर भी कहीं कोई छोटा सा सर्प निकल आवे तो उन्हें निद्रा नहीं आती, चिन्ता ही बनी रहती है कहीं काट न ले "ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेवं न संशयः" सर्प वाले घरमें रहना भी मृत्युके सदृश है,किन्तु आप उसी महाविषधर वृहद्काय सर्प की छाती पर ही बिस्तर बिछाते हो, उसी की अत्यन्त चिकनी देह को शैया बनाते हो, और उन तरङ्ग मालाओं के भीतर शेष की शैया पर सुख से सोते हो, उदरस्थ समस्त प्राणियों के निद्रासुख में अभिवृद्धि करते हो। प्रतिकूल शैया भी आपके अत्यन्त अनुकूल पड़ती है। ऐसे हे शेषशायी सर्वेश्वर! आपको मैं प्रणाम करता हूँ।

हे कमलनाभ! मेरी उत्पत्ति आपके नाभिकमल से हुई। हुई जगत् के जीवों के सभी सूक्ष्म बीज उस नाल द्वारा होकर मेरे मनमें प्रविष्ट हो गये हैं, इसीलिये मैं अज-जन्म रहित-अनादि जिसका आदि न हो-आदि पुरुष-समस्त चराचर सृष्टि का प्रथम पुरुष—वन्दनीय तथा पूजनीय कहलाता हूँ। आपकी कृपा से ही मेरी इतनी प्रतिष्ठा हुई है। पिता के कारण ही तो पुत्र की प्रतिष्ठा होती है। पिता की जाति का ही तो पुत्र कहलाता है। मैं आपका पुत्र हूँ, अतः प्राणी मुझे भी आपकी भाँति आदि पुरुष-अज तथा

प्रजापति पति कहते हैं। वास्तव में तो जगत् के कारण हे जगदाधार! आप ही हैं। यह सम्पूर्ण जगत् आपके ही उदर में स्थित है। आप ही सबको समेटकर योगनिद्रा का आस्वादन सबको करा रहे हैं, जब काल आने पर योगनिद्रा की परिसमाप्ति हो जाती है, उसका अन्त हो जाता है तब आपके कमलनयन! खिल उठते हैं, नयनारविन्द विकसित हो उठते हैं, मुख पर मन्द मधुर मुस्कान छिटकने लगती है, ऐसे आपके विश्व विमोहन सुखकर स्वरूप को पुनः पुनः प्रणाम है, बारम्बार नमस्कार है।

हे सर्वसुहृद! हे परमात्मन्! हे शरणागतवत्सल! आप जीवों के अवगुणों की ओर ध्यान नहीं देते, उनके कुकर्मों को देखकर भी आप उनसे शत्रुता नहीं करते, सभी को समान भाव से सहृदयतापूर्वक निहारते हैं, सभी आपके खिलौने हैं, सभी आपके अपने हैं, सभी के आप आत्मा हैं, माता पिता हैं। जैसे गौ अपने वत्स के मैले शरीर से भी अत्यन्त प्यार करती है, उसके शरीर के मैल को भी अत्यन्त स्नेह से चाट लेती है, पास में पड़े बच्चों को चाट-चाटकर निर्मल स्वच्छ विशुद्ध बना देती है। इसी प्रकार आप भी अपनी शरण में आये जीवों के सभी दोषों को चाट जाते हैं, उनके अपराधों की ओर ध्यान ही नहीं देते। अपना रूप उन्हें प्रदान कर देते हैं। उन्हें शुद्ध, बुद्ध, निरञ्जन, निष्कल्मष तथा निर्मल बना देते हैं। हे ज्ञान स्वरूप! आप अपने अनन्त ज्ञान से, अपरिमित ऐश्वर्य से, विश्व विमोहिनी शोभा से, सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य से सम्पूर्ण संसार को सुख पहुँचाते हैं, विश्वब्रह्माण्ड को विमोहित बनाते हैं। अखिल विश्व को आनन्दित करते हैं। हे आनन्दघन! अपने ज्ञान और ऐश्वर्य से मेरी बुद्धि को भी विशुद्ध बना दीजिये, जिससे मैं आपकी आज्ञा के पालन करने में सर्वथा समर्थ हो सकूँ। आपकी कुछ सेवा सुश्रूषा कर सकूँ, इस चराचर जगत् की पूर्व सर्गों के समान

रचना करने में समर्थ हो सकूँ। आपकी ही कृपा से सब कु सम्भव हो सकता है। आप ही सबके प्रेरक हैं। आपके पादप में प्रणाम है।

प्रभो! आप प्रति सर्ग में अनन्त लीलायें करते हैं, अनन्त अवतार धारण करते हैं, अगणित आश्रितों को कृतार्थ करते हैं असंख्यों अभिनय रचते हैं। लक्ष्मीरूपा अपनी शक्ति के सहि खेलते रहते हैं सरस सुखद सम्वाद सुनाते हैं, सुनते हैं, सभी वं सुख पहुँचाते हैं। हे प्रणतप्रिय! आप अपने अवतारों में जो अद्भुत कर्म करेंगे उनमें से सृष्टि रचना रूप भी एक सामान कार्य है। प्रभो! मैं तो सृष्टि रचना के ही निमित्त आपसे उत्प किया गयाहूँ, इसीलिये मेरे मनमें सृष्टि रचनाकी इच्छा ही बलव हो रही है, सृष्टि कैसे बढ़े यही अभिलाषा चित्त में प्रेरित हो र है। आप उसे ही पूरा करें। जगत् रचना रूप अपने विक्रम मेरा उपयोग करें, मुझे सृष्टि करने की सीख सिखावें। उत्पा का क्रम बतावें। मेरे मनमें यह अभिमान न हो जाय कि इ सम्पूर्ण सृष्टि का एकमात्र कर्ता मैं ही हूँ। सृष्टि रचना विषय जो अभिमान है, यदि वह मेरे मन में आ जाय तो वह तो मल समान है, उसे मैं अविलम्ब अग्राह्य समझकर छोड़ सकूँ, ऐस बुद्धि मुझे दीजिये। हे देव! आपके चरणों में बारम्बार नमस्कार है।

हे वेदस्वरूप! हे विज्ञानघन! मैं आपके नाभिकुंड में खिले हुए कमल से उत्पन्न हुआ हूँ मेरा उत्पत्ति स्थान आपकी नाभि है, आपका मध्यभाग है। आप अनन्त शक्तियुक्त अखिलेश इस प्रलयकालीन जलमें सुखपूर्वक शयन कर रहे हैं, उसी समय काल की प्रेरणा से सबसे बड़े आदितत्व—महत्तत्व—का अभिमानी देव मैं उत्पन्न हो गया। उस विज्ञान शक्ति का अधिष्ठातृदेव मैं स्वतः कुछ करने में सर्वथा असमर्थ हूँ। आपकी ही कृपा से

आपकी ही अद्भुत शक्ति से मैं इस चराचर जगत् की सृष्टि कर सकूँगा। इस चित्र विचित्र विश्व ब्रह्माण्ड का विस्तार कर सकूँगा, किन्तु उस समय मेरा ज्ञान नष्ट न हो जाय, अपने को ही मैं सब कुछ न समझने लगूँ, मेरी वेदरूपावाणी विलुप्त न हो जाय, मेरा वेद का ज्ञान मुझे छोड़कर चला न जाय। आपकी कृपा अनुग्रह का अनुभव मैं प्रतिक्षण करता रहूँ, यही मेरी आपके पादपद्मों में प्रार्थना है, आप वेदस्वरूप ब्रह्म को मैं बार बार प्रणाम करता हूँ।

हे अपार करुणामय स्वामिन्! मेरी ओर सदय होकर देखिये! हे कृपा के सागर! मेरे ऊपर कृपा दृष्टि की वृष्टि कर दीजिये। हे करुणानिधान भगवन्! अपनी प्रेमभरी अवलोकन से मुझे कृतार्थ कर दीजिये, हे पुराणपुरुष! अपने मन्द मन्द मृदुल मुसकान युक्त युगल कमलनयनों से मेरी ओर निहारिये। हे जगदाधार! सम्पूर्ण जगत् के जीवों का कल्याण कीजिये। हे भक्तानुग्रहकातर! मुझ आत्मज पर अनुग्रह प्रदर्शित करने के निमित्त शेष शैया से तनिक उठकर मुझसे दो चार मीठी-मीठी वात्सल्य रस में सनी बातें कीजिये। मुझे कुछ सदुपदेश तथा सुहावनी शिक्षा दें। मैं कबसे प्रार्थना कर रहा हूँ, मैं आपका बालक हूँ, तोतली वाणी से जो भी मैंने कहा हो, उसे सदय होकर सुनिये और श्रमित हुए मुझ बालक की विनय को सुनकर कुछ कहकर मेरे खेद को मिटा दें।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब ब्रह्माजी ने भगवान् की इस प्रकार स्तुति की तब भगवान्ने उन्हें सृष्टि रचना सम्बन्धी उपदेश दिया। फिर उन्होंने कैसे सृष्टि की, कै प्रकार की की, यह सृष्टि रचना विषयक दूसरा वृत्त है, इसे सम्भव हुआ तो मैं सृष्टि रचना प्रसङ्ग में कहूँगा। यह मैंने ब्रह्माजी की स्तुति आपको सुनायी। अब वाराह अवतार लेने पर ऋषियों ने जैसे उन

पृथ्वी उद्धारक प्रभु की स्तुति की उस प्रसङ्ग को मैं आगे सुनाऊँगा, आप सब दत्तचित्त होकर श्रवण करें।

छप्पय

रमा सहित अवतार धारि क्रीडा जो करिहैं।
गाइ-गाइ नर-नारि तिनहिँ भव जलनिधितरिहैं ॥
होवै नहिँ अभिमान करूँ कारज जो जगमें।
होहि ज्ञान नहिँ लोप जगत रचना के मगमें ॥
यो बहु विधि इस्तुति करी, अज धीरे से थकि गये।
सुनि विनती विधिकी विमल, प्रभु परमेश्वर हँसि गये ॥

पद

करूँ सब सेवा समुझि तिहारी।
शेप शरीर सुखद अति शैया, लेउ नींद सुखकारी ॥१॥ करूँ०
पाइ काल क्रीड़ाहित, जगकरि, विहरो विश्व विहारी।
समय पाइ पुनि सब संहारो, खेलो खेल खिलारी ॥२॥ करूँ०
होइ मोह अभिमान न नेकहुँ, हौं जगकर्ता भारी।
कृपा करो करुनाकर कारक, कमलचरन वलिहारी ॥३॥ करूँ०
सोये बहुत नयन प्रभु खोलो, अब उठिवे की वारी।
मन्द मन्द मुसकाइ निहारो, मोहन मदन मुरारी ॥४॥ करूँ०
विनती सुनि हरि हँसे कृपामय, अज सब चिन्ता टारी।
प्रभुपद पदुम पराग प्रेमतें, वार-वार सिर धारी ॥५॥ करूँ०

—:※:—

सृष्टि रचनार्थ ब्रह्मस्तुति (६)

अथ नवमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ज्ञातोऽसि मेऽद्य सुचिरान्नु देहभाजां,
न ज्ञायते भगवतो गतिरित्यवद्यम् ।
नान्यत्त्वदस्ति भगवन्नपि तन्न शुद्धं,
मायागुणव्यतिकराद्यदुरुर्विभासि ॥१॥
रूपं यदेतदवबोधरसोदयेन,
शश्वन्निवृत्ततमसः सदनुग्रहाय ।
आदौ गृहीतमवतारशतैकबीजं,
यन्नाभिपद्मभवनादहमाविरासम् ॥२॥
नातः परं परं यद्भवतः स्वरूप,
मानन्दमात्रमविकल्पमविद्धवर्चः ।
पश्यामि विश्वसृजमेकविश्वमात्मन्,
भूतेन्द्रियात्मकमदस्त उपाश्रितोऽस्मि ॥३॥
तद्वा इदं भुवनमङ्गलमङ्गलाय,
ध्याने स्म नो दर्शितं त उपासकानाम् ।
तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेमतुभ्यं,
योऽनादृतोनरकभाग्भिरसत्प्रसङ्गैः ॥४॥
ये तु त्वदीयचरणाम्बुजकोशगन्धं,

जिघ्रन्ति कर्णविवरैः श्रुतिवातनीतम् ।
भक्त्या गृहीतचरणः परया च तेषां,
नापैषि नाथ हृदयाम्बुरुहात्स्वपुंसाम् ॥५॥
तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं,
शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः ।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं,
यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः ॥६॥
दैवेन ते हतधियो भवतः प्रसङ्गात्,
सर्वाशुभोपशमनाद् विमुखेन्द्रिया ये ।
कुर्वन्ति कामसुखलेशलवाय दीना,
लोभाभिभूतमनसोऽकुशलानि शश्वत् ॥७॥
क्षुत् तृट्त्रिधातुभिरिमा मुहुरर्द्यमानाः,
शीतोष्णवातवर्षैरितरेतराच्च ।
कामाग्निनाच्युत रुषा च सुदुर्भरेण,
सम्पश्यतो मन उरुक्रम सीदते मे ॥८॥
यावत्पृथक्त्वमिदमात्मन इन्द्रियार्थ,
मायाबलं भगवतो जन ईश पश्येत् ।
तावन्न संसृतिरसौ प्रतिसंक्रमेत,
व्यर्थापि दुःखनिवहं वहती क्रियार्था ॥९॥
अह्न्यापृतार्तकरणा निशि निःशयाना,
नानामनोरथधिया क्षणभग्ननिद्राः ।

दैवाहतार्थरचना ऋषयोऽपि देव,
युष्मत्प्रसङ्गविमुखा इह संसरन्ति ॥१०॥
त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज,
आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम्।
यद् यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति,
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥११॥
नातिप्रसीदति तथोपचितोपचारैः
आराधितः सुरगणैर्हृदि बद्धकामैः।
यत्सर्वभूतदययासदलभ्ययैको,
नानाजनेष्ववहितः सुहृदन्तरात्मा ॥१२॥
पुंसामतो विविधकर्मभिरध्वराद्यैः,
दानेन चोग्रतपसा व्रतचर्यया च।
आराधनं भगवतस्तव सत्क्रियार्थो,
धर्मोऽर्पितः कर्हिचिद्ध्रियते न यत्र ॥१३॥
शश्वत्स्वरूपमहसैव निपीतभेद,
मोहाय बोधधिष्ण्याय नमः परस्मै।
विश्वोद्भवस्थितिलयेषु निमित्तलीला,
रासाय ते नम इदं चकृमेश्वराय ॥१४॥
यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि,
नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति।
ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा,

संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये ॥१५॥

यो वा अहं च गिरिशश्च विभुः स्वयं च,
स्थित्युद्भवप्रलयहेतव आत्ममूलम् ।
भित्त्वा त्रिपाद्ववृध एक उरुप्ररोहः,
तस्मै नमो भगवते भुवनद्रुमाय ॥१६॥

लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः,
कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ।
यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां,
सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥१७॥

यस्माद् बिभेम्यहमपि द्विपरार्धधिष्ण्यम्,
अध्यासितः सकललोकनमस्कृतं यत् ।
तेपे तपो बहुसवोऽवरुरुत्समानः,
तस्मै नमो भगवतेऽधिमखाय तुभ्यम् ॥१८॥

तिर्यङ्मनुष्यविबुधादिषु जीवयोनि,
ष्वात्मेच्छयाऽऽत्मकृतसेतुपरीप्सया यः ।
रेमे निरस्तरतिरप्यवरुद्धदेहः,
तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय ॥१९॥

योऽविद्ययानुपहतोऽपि दशार्धवृत्त्या,
निद्रामुवाह जठरीकृतलोकयात्रः ।
अन्तर्जलेऽहिकशिपुस्पर्शानुकूलां,
भीमोर्मिमालिनि जनस्य सुखं विवृण्वन् ॥२०॥

यन्नाभिपद्मभवनादहमासमीड्य,
लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण ।
तस्मै नमस्त उदरस्थभवाय योग,
निद्रावसानविकसन्नलिनेक्षणाय ॥२१॥

सोऽयं समस्तजगतां सुहृदेक आत्मा,
सत्त्वेन यन्मृडयते भगवान् भगेन ।
तेनैव मे दृशमनुस्पृशताद् यथाहं,
स्रक्ष्यामि पूर्ववदिदं प्रणतप्रियोऽसौ ॥२२॥

एष प्रपन्नवरदो रमयाऽऽत्मशक्त्या,
यद् यत्करिष्यति गृहीतगुणावतारः ।
तस्मिन् स्वविक्रममिदं सृजतोऽपि चेतो,
युञ्जीत कर्मशमलं च यथा विजह्याम् ॥२३॥

नाभिहृदादिह सतोऽम्भसि यस्य पुंसो,
विज्ञानशक्तिरहमासमनन्तशक्तेः ।
रूपंविचित्रमिदमस्य विवृण्वता मे,
मा रीरिषीष्ट निगमस्य गिरां विसर्गः ॥२४॥

सोऽसावदभ्रकरुणो भगवान् विवृद्ध,
प्रेमस्मितेन नयनाम्बुरुहं विजृम्भन् ।
उत्थाय विश्वविजयाय च नो विषादं,
माध्व्या गिरापनयतात्पुरुषः पुराणः ॥२५॥

ऋषियों द्वारा वाराह भगवान् की स्तुति

(२३)

जितं जितं तेऽजित यज्ञ भावन
त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नमः ।
यद्रोमगर्तेषु निलिल्युरध्वरा-
स्तस्मै नमः कारणसूकरायते ॥❀
(श्रीभा० ३ स्क० १३ अ० ३४ श्लो०)

छप्पय

अवनि प्रविशि पाताल प्रजापति भये दुखारी ।
विभु वराह वपुधारि धारितैं तुरत निकारी ॥
नील कमल सम देह श्वेत द्विज पै भू धारी ॥
कमल दन्त जिमि धारि फिरै सर गज बनचारी ।
ऋषि मुनि मिलि इस्तुति करें, जय वराह तनु यज्ञसम ।
छन्द त्वचा, कुशरोम, घृत, नयन चरन ऋत्विज करम ॥

जीवों को सुख पहुँचाने के निमित्त अपनी लीलाओं को संसार के सम्मुख प्रकट करने के निमित्त भगवान् विविध अवतार धारण

❀ वाराह भगवान् की स्तुति करते हुए ऋषिगण कह रहे हैं—"हे अजित ! आपकी जय हो । हे यज्ञभावन ! आप अपने तीनों वेद स्वरूप शरीर से फुरहुरी ले रहे हैं, ऐसे शरीर के रोमों को हिलाते हुए आपको नमस्कार है । आपके रोमकूपों में समस्त यज्ञ विलीन हो रहे हैं, ऐसे आप शूकर रूपधारी प्रभुको पुनः पुनः प्रणाम है ।

करते हैं, उन अवतारों में भाँति-भाँति की क्रीड़ायें करते हैं, ऋषि मुनि तथा सन्त जन उनको अनेक प्रकार से स्तुति विनय करते हैं, इन सबको जो सुनते सुनाते हैं, पढ़ते पढ़ाते हैं, वे अवश्य ही परमपद के अधिकारी बन जाते हैं। अतः अवतार चरित्रों को सुनना सुनाना स्तुतियों का गान करना, श्रवण करना, अपने साथी संगियों को सुनाना यही जीव का परम पुरुषार्थ है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब ब्रह्माजी ने सृष्टि रचना के संकल्प सनकादि मरीचि, अंगिरा आदि मानसिक पुत्रों को उत्पन्न किया और उन मानसिक पुत्रों द्वारा जब सृष्टि का विस्तार नहीं हुआ तब ब्रह्माजी बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने सोचा—"इस प्रकार सृष्टि कैसे बढ़ सकती है, हे भगवन् सृष्टि वृद्धि का कोई सरल उपाय बताओ। इन ऋषियों को मैं कब तक अनुनय विनय करता रहूँगा ये कोई मेरी बात सुनते ही नहीं। कोई ऐसा आकर्षण हो कि सृष्टि रचना में पुरुष आपसे आप बिना प्रेरणा के प्रवृत्त हों।" ब्रह्माजी यह सोच ही रहे थे कि उनके शरीर के दो भाग हो गये, एक भाग से स्त्री दूसरे से पुरुष ऐसे एक जोड़ा उत्पन्न हुआ। वे परस्पर में एक दूसरे से प्यार करने लगे। वे आदि पुरुष स्वायम्भुव मनु हुए। स्त्री शतरूपा नारी हुई। उन्होंने ब्रह्माजी से विनय की—भगवन्! हम क्या करें?" ब्रह्माजी ने कहा—"तुम दोनों मिलकर सृष्टि वृद्धि करो।"

इसपर मनुजी बोले—भगवन्! एक जोड़े का साथ में रहने को घोंसला तो चाहिये। जिसमें सुख से दांपत्य भाव से रह सके। पृथिवी तो पाताल में चली गई है जल में डूब गई है हम रहें कहाँ?"

यह ब्रह्माजी को दूसरी चिन्ता हुई—कैसे पृथ्वी का उद्धार हो, पृथ्वी को कौन जल से ऊपर लावे।" ब्रह्माजी यह सोच ही

रहे थे कि उनकी नासिका से एक सूकर शिशु निकला और क्षण भर में पर्वताकार बनकर जल में घुसा और पृथ्वी को अपनी दाढ़ पर रखकर ऊपर ले आया। ब्रह्मलोक में बैठे-बैठे ब्रह्माजी और उनके मानसिक पुत्र सनकादि मरीचादि ऋषि भी देख रहे थे। पृथ्वी सहित प्रभु को जल के ऊपर आते देखकर उन्हें बोध हुआ ये तो साक्षात् यज्ञ पुरुष हैं। भगवान् हैं, अतः वे सुमधुर वैदिक स्तोत्रों से उनकी स्तुति करने लगे।

ऋषि मुनियों ने कहा—"हे भगवन्! आप भूदेवी जगन्माता को पाताल से ले आये, अतः आपकी जय हो जगन्माता की जय हो, जगत् पिता की जय हो। जल से निकलते ही जो आपने फुरहरी लीली यह हिलता हुआ शरीर वेदत्रयी रूप है, अत ऐसे आपके श्री विग्रह की विजय हो जय हो सदा मंगल हो।

नाथ! आपके रोम रोम में-प्रत्येक रोम कूप में-सम्पूर्ण यज्ञ याग समाये हुए हैं आप साक्षात् यज्ञ के ही स्वरूप हैं आपको हमारी वारम्वार नमस्कार है। हे यज्ञ स्वरूप! हे सूकर वपुधारी हे पृथ्वी उद्धारी विहारी! हमारी नमस्कार को स्वीकार कीजिये आपका यह सूकर स्वरूप नहीं है आपने तो लीला के लिये किसी विशेष प्रयोजन के लिये किसी कारण वश यह रूप रख लिया है। आपके पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

प्रभो! आपके इस वेदमय यज्ञमय स्वरूप के दर्शन सभी नहीं कर सकते। सभी को इसकी बाँकी झाँकी नहीं मिल सकती। सभी के दृष्टिगोचर आप नहीं हो सकते। इसका साक्षात्कार सदाचारी सज्जनों को ही सम्भव है। जो दुष्ट हैं दयाहीन हैं, दुराचारी तथा दुर्विनीत हैं उनको यह दयामय दर्शन दुर्लभ है दुर्दश है। आप साक्षात यज्ञ स्वरूप हो। यज्ञ की सभी सामग्री आपके शरीर में सन्निहित है। प्रत्येक अंग में यज्ञ के कर्म, पात्र, संस्कार तथा विधिविधान वर्त्तमान है।

हे यज्ञाधिप! आपकी जो यह त्वचा है, ये ही यज्ञ में प्रयुक्त हो यानी गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप और जगती छन्द हैं। यह जो आपकी खड़ी हुई रोमावली है, वे ही मानों यज्ञ कर्म में काम आने वाली कुशायें हैं। यह जो आपके चमकते हुए नेत्रों में विलक्षण ओज दृष्टिगोचर हो रहा है, वही मानों, यज्ञ करने के निमित्त घृत विद्यमान है। आपके जो ये चारों चारुचरण हैं, जिनके विलक्षण विन्यास से आप वारि को फाड़ते हुए ऊपर आये हैं, ये चारों चरण ही मानों यज्ञ में कार्य करने वाले, होता, अध्वर्यु, उद्‌गाता और ब्रह्मा ऋत्विजों के चारों कर्म हैं।

प्रभो! चक्र के समान जो आप का यह विलक्षण तुण्ड है, वही मानों यज्ञ का स्रुक्‌पात्र है। जिस पात्र से अग्नि में घृत डाला जाता है, वह स्रुवा ही मानों आपकी नासिका है। यज्ञीय भक्षण पात्र इडा ही मानों आपका बृहद् उदर है। यज्ञीय चमस पात्र मानों आपके कानों के छिद्र हैं। ब्रह्म भाग पात्र प्राशित्र स्थानीय आपका मनोहर मुख है। सोमपात्र ग्रह ही आपके कंठ का छिद्र है। आप जो चर्वण करते हैं, चबाते हैं, वह मानों अग्निहोत्र हो रहा है।

हे स्वामिन! हे प्रभो! आप जो बारम्बार अभिव्यक्त होते हैं वही मानों यज्ञीय दीक्षा है। यज्ञ की तीन इष्टियाँ जिन्हें उपसद कहते हैं वही आपकी ग्रीवा की त्रिवली है। दीक्षा के अनन्तर की इष्टि प्रायणीय और यज्ञ के समाप्ति की इष्टि उदयनीय ये दो इष्टियें ही मानों आपकी दो लम्बी-लम्बी तीक्ष्ण दाढ़ें हैं। यज्ञ की जो तीन इष्टियाँ जिन्हें उपसद कहते हैं उन प्रत्येक उपसद के पूर्व जो कर्म किया जाता है उसकी महावीर संज्ञा है यह प्रवर्ग्य कर्म ही मानों आपकी जिह्वा

होम रहित अग्नि की संज्ञा सभ्य है। उपासना की जो अग्नि उसका नाम आवसथ्य है, ये दोनों सभ्य और आवसथ्य मानों सिर हैं। यज्ञ में जो इष्टाचयन चिति कर्म है मानों प्राण हैं।

हे पराक्रम शाली प्रभो! सोमयागों में जो सोम रस है आपके वीर्य स्थानी है। मानों आपका वीर्य ही सोम रस है। यज्ञ में प्रातः सवन माध्यन्दिन सवन और सायं सवन ये तीन सवन होते हैं ये ही आपके आसन हैं। यज्ञ की अत्यग्निष्टोम उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तो- नामक की ये सात संस्थायें हैं, ये ही मानों आपकी रस, मांस, मज्जा, त्वक, अस्थि और वीर्य और ओज ये सात हैं। जितने सत्र हैं वे सब मानों आपके शरीर की सन्धियाँ हैं। प्रभो! जिस याग में सोमरस का प्रयोग होता है उसे यज्ञ कहते हैं और सोम सहित याग का नाम है, आपका यह श्री विग्रह यज्ञ और क्रतु दोनों का रूप है।

हे सर्वेश्वर! आपके सम्पूर्ण अंगों की गठन ही यज्ञानुष्ठान है। वेदों के जितने मन्त्र हैं, यज्ञ भाग पाने जितने देवता हैं, तथा जितने भी यज्ञीय द्रव्य हैं इन इन रूप आप ही हैं। ऐसे सर्व स्वरूप सवमय आप प्रभु के पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है। हे सर्वसाक्षी सर्ववेत्ता कर्म रूप सर्वयज्ञ स्वरूप तथा सर्वक्रिया मूर्ति आपके कमलों में वारम्वार नमस्कार है।

हे योगेश्वर! संसारी मिथ्या विषयों से वैराग्य करके श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन, दास्य, सख्य आत्म निवेदन रूपा नवधा भक्ति के द्वारा अथवा चित्त बिखरी हुई वृत्तियों का निरोध करके एकाग्र मन से-जो

[illegible]म्भव होता है वह आपका ही स्वरूप है। समस्त विद्याओं के [illegible]दाता ज्ञानदाता सद्गुरु भी आप ही हो। अज्ञानान्धकार को [illegible]टकर ज्ञानलोक प्रदान करनेवाले ऐसे गुरुओं के भी गुरु आप [illegible]गत् गुरु के पादपद्मों में हमारा पुनः पुनः प्रणाम है।

हे भगवन्! आप ने जगन्माता भूदेवी को अपनी दाढ़ों [illegible] नोंक पर बिठा रखा है, इस समय आपकी शोभा अपूर्व है। [illegible] शोभा का जिन्होंने दर्शन किया वह धन्य हो गया, कृतार्थ [illegible] गया। हे भूधर! आप जिस समय अगाध नील जल से [illegible]थ्वी माता को दाढ़ पर रखकर निकले हैं, उस समय आपकी [illegible]भा ऐसी हो रही है जैसे नील वर्ण का मत्त गजराज पत्र [illegible]क्त कमलिनी को अपने निकले हुए दाँतों पर रखकर सघन [illegible]त के बाहर निकल रहा हो। हे वेदत्रयी रूप भगवन्! जैसे [illegible]लाचलपर्वत के शिखरों पर छाये हुए सजल घनों की [illegible]भा होती है, उसी प्रकार आपकी दाढ़ों पर विराजमान [illegible]ली साड़ी ओढ़े जननी अवनी की आभा आभासित हो [illegible]ही है।

हे भक्तवत्सल! हे अशरणशरण! हे स्वामिन्! माता [illegible]ो पिता इसीलिये लाते हैं, कि उसके उदर में उसकी छत्र-छाया [illegible], उसके आश्रय में सन्तानें रह सकें। आप जगत् पिता इस [illegible]गज्जननी अवनी को भी भली भाँति स्थापित कर दें जिससे [illegible]ापके सन्तान रूप चराचर जीव इनके आश्रय में सुखपूर्वक [illegible]निवास कर सकें।

हे सबके उत्पादक! हे सम्पूर्ण जगत् के जनक! जैसे [illegible]रणि में अग्नि स्थापित की जाती है वैसे ही आप पृथ्वी माता [illegible] अपना तेज-वीर्य स्थापित कीजिये। हे जगत् पिता। आपके

पादपद्मों में प्रणाम है। हे जगन्माता! आपके चरणकमलों की मं हम वन्दना करते हैं। माता च पिता च पितरौ हे पितरौ! आ दोनों को बारम्बार नमस्कार है।

प्रभो! बड़े ही बड़े कामों को कर सकते हैं। सामर्थ्यवा ही सर्वश्रेष्ठ साहस कर सकते हैं। ये जगज्जननी तो पाता में चली गयी थीं, अगाध जल के भीतर जाकर छिप गयी थीं इन्हें वहाँ से निकालने का साहस आपके अतिरिक्त कौन क सकता था? कौन इन्हें इतने गहर गम्भीर स्थान से खोजक ला सकता था? कौन इनका उद्धार करने में समर्थ हो सकता था? कौन इन्हें जलके ऊपर उठाकर स्थापित कर सकन था? हे सर्वसमर्थ प्रभो! आपकी महिमा अपार है, आपर्क सामर्थ्य अप्रमेय है आपकी शक्ति अपरिमित है। पृथ्वी क उद्धार करना बड़े आश्चर्य की बात है। बहुत ही विस्मयकार वार्ता है, किन्तु समस्त विस्मयों के एकमात्र आश्रय तो आप अच्युत ही हैं सम्पूर्ण विस्मय तो आपका ही आश्रय लेती है। जिर संसार में एक से एक विस्मय भरी पड़ी है, उस सम्पूर्ण चराच जगत् को तो आप ही उत्पन्न करते हैं, फिर पृथ्वी का उद्धार करना आपके लिये कौन-सी विस्मय की बात है। आपके लिं तो यह अत्यन्त साधारण सहज स्वभाव जन्य कार्य है। अतः हे विस्मय कारक विभो! आपके अमल विमल चरणकमलों में हमारा प्रणाम स्वीकार हो।

हे पावनों के भी पावन! हे पतितपावन! हे स्वामिन् जल से निकलकर जब आप फुरहरी लेते हो। अपने वे. श्रीविग्रह को हिलाते हो, तब आपकी जटाओं से शरीर के रोमं में झड़ती हुई शीतल जल की बूँदें हमारे शरीरों के ऊप गिरती हैं, उनके संसर्ग से हम जनलोकवासी, तपलोकवास तथा ब्रह्मलोकवासी जीव कृतार्थ हो जाते हैं। हम समर

ऋषि मुनिगण अपने को धन्य मानते हैं। कृतकृत्य समझते हैं, अपने जीवन को सार्थक मानते हैं, हम उस पावन जलके संसर्ग से परम पावन बन जाते हैं, पवित्र हो जाते हैं, ऐसे परम पावन प्रभुके पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

हे प्रभो ! आप अपार कर्मा है। आपके कर्मों की संख्या नहीं, गणना नहीं, पार नहीं, इयत्ता नहीं, सीमा नहीं, जो आप सर्वसमर्थ प्रभुके कर्मों की संख्या करना चाहते है, सीमा बाँधना चाहते हैं। वे अज्ञ हैं, अबोध हैं, भोले भाले तथा ज्ञानहीन हैं, अवश्य ही उनकी मति मारी गयी है, बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। भला आप अपारकर्मा के कर्मों का पार कोई व्यक्ति पा ही कैसे सकता है। आप निस्सीम की सीमा कोई निर्धारण कैसे कर सकता है ? आपने कुछ ऐसा सम्मोहन मन्त्र फूँक दिया है कि यह सम्पूर्ण जगत् विमोहित बन गया है, आपकी योगमाया के सत्व, रज, और तम इन तीनों गुणों के प्रभाव से यह निखिल विश्व ब्रह्माण्ड बौरा गया है, अपने यथार्थ स्वरूप को भूलकर कुछ से कुछ करने लगा है। कुशल कर्मों से विमुख होकर विकर्मों में फँस गया है। हे कल्याणगुणगणार्णव ! आप इन जीवों का उद्धार कीजिये। हे भगवन् ! सबका मङ्गल कीजिये, शिव कीजिये, कल्याण कीजिये आपके पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जन, तप और सत्य लोक निवासी ऋषि मुनियों की विनती सुनकर वाराह भगवान् ने भूमिको को जल के ऊपर स्थापित कर दिया और फिर सृष्टिका क्रम चालू हो गया। यह मैंने अत्यन्त संक्षेप में ऋषियों द्वारा की हुई वाराह भगवान् की स्तुति कही अब जिस प्रकार मातादेवहूति ने अपने पुत्र और गुरु भगवान् के अवतार कपिल

की स्तुति की, उसे मैं आगे कहूँगा। आप सब समाहित चित्त से श्रवण करें।

छप्पय

स्रुक् अरु स्रुव मुख नाभि इडा ईं नाथ उदर है।
चमस करन प्राशित्र मुखहु ग्रह कंठ छिद्र है॥
चरवन ही है होम दीखनों दीक्षा प्यारी।
उपसद ग्रीवा कहीं इष्टि द्वै दाद तिहारी॥
जिह्वा कहीं प्रवर्ग्य हरि, द्वै अगिनी सिर प्रानचिति।
सोमवीर्य आसन सयन, सात धातु संस्था विदिति॥
सन्धि सत्र सब कहे यज्ञक्रतुमय कहलाओ।
अङ्ग गठन अनुठान मन्त्र सुर द्रव्य कहाओ॥
सर्वयज्ञ अरु क्रिया रूप तुमरे सब गावैं।
सबके गुरु तव चरन कमल महँ शीश नवावैं॥
धरे कमलनी दाँत गज, त्यों द्विज भू धरि उदित जल।
तन जल बूँदनि करे शुचि, बन्दौं प्रभु तव पद कमल॥

पद

नाथ! तुम सूकर को वपु धारयो।
वेद विदित हरि मख वपु धारे, अद्भुत रूप निहारो॥१॥नाथ०
जीव चराचर सुखतें सोवें, जलतें भूमि निकारो।
शोभित अवनी धरी दाढ़पे, गिरिपे घन जिमि कारो॥२॥नाथ०
अथवा मत्त गयन्द दाँत धरि, कुमुदिनि पंक उबारयो।
शोभा निरखि सकल मुनि हरषे, जयजय शब्द उचारयो॥३॥ना०
जलतें निकसि हिलायो निज तनु, बूँदनि को जल डारयो।
पावन भये पाइ प्रभु दरशन, जीवन सफल हमारो॥४॥नाथ०

ऋषिगणकृत वाराह स्तुति

ऋषयऊचुः

जितं जितं तेऽजित यज्ञभावन,
त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नमः ।
यद्रोमगर्तेषु निलिल्युरध्वरा,
स्तस्मै नमः कारणसूकराय ते ॥१॥
रूपं तवैतन्ननु दुष्कृतात्मना,
दुर्दर्शनं देव यदध्वरात्मकम् ।
छन्दांसि यस्य त्वचि बर्हिरोम,
स्वाज्यं दृशि त्वङ्घ्रिषु चातुर्होत्रम् ॥२॥
स्रुक्तुण्ड आसीत्स्रुव ईश नासयो,
रिडोदरे चमसाः कर्णरन्ध्रे ।
प्राशित्रमास्ये ग्रसने ग्रहास्तु ते,
यच्चर्वणं ते भगवन्नग्निहोत्रम् ॥३॥
दीक्षानुजन्मोपसदः शिरोधरं,
त्वं प्रायणीयोदयनीयदंष्ट्रः ।
जिह्वा प्रवर्ग्यस्तव शीर्षकं क्रतोः,
सभ्यावसथ्यं चितयोऽसवोहि ते ॥४॥
सोमस्तु रेतः सवनान्यवस्थितिः,

संस्थाविभेदास्तव देव धातवः ।
सत्राणि सर्वाणि शरीरसन्धिः,
त्वंसर्वयज्ञक्रतुरिष्टिबन्धनः ॥५॥
नमो नमस्तेऽखिलमन्त्रदेवता,
द्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने ।
वैराग्यभक्त्यात्मजयानुभावितः,
ज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ॥६॥
दंष्ट्राग्रकोट्या भगवंस्त्वया धृता,
विराजते भूधर भूः सभूदरा ।
यथा वनान्निःसरतो दता धृता,
मतङ्गजेन्द्रस्य सपत्रपद्मिनी ॥७॥
त्रयीमयं रूपमिदं च सौकरं,
भूमण्डलेनाथ दता धृतेन ते ।
चकास्ति शृङ्गोढघनेन भूयसा,
कुलाचलेन्द्रस्य यथैव विभ्रमः ॥८॥
संस्थापयैनां जगतां सतस्थुषां,
लोकाय पत्नीमसि मातरं पिता ।
विधेम चास्यै नमसा सह त्वया,
यस्यां स्वतेजोऽग्निमिवारणावधाः ॥९॥
कः श्रद्दधीतान्यतमस्तव प्रभो,
रसां गताया भुव उद्विबर्हणम् ।

न विस्मयोऽसौ त्वयि विश्वविस्मये,
यो माययेदं सृजतेऽतिविस्मयम् ॥१०॥
विधुन्वता वेदमयं निजं वपुः,
जनस्तपःसत्यनिवासिनो वयम् ।
सटाशिखोद्धू तशिवाम्बुबिन्दुभिः,
विमृज्यमाना भृशमीश पाविताः ॥११
स वै बत भ्रष्टमतिस्तवैष ते,
सः कर्मणां पारमपारकर्मणः ।
यद्योगमायागुणयोगमोहितं,
विश्वं समस्तं भगवन् विधेहि शम् ॥१२॥

माँ देवहूति द्वारा कपिल भगवान् की स्तुति

(२४)

तं त्वामहं ब्रह्म परं पुमांसम्,
प्रत्यक्स्रोतस्यात्मनि संविभाव्यम् ।
स्वतेजसा ध्वस्त गुणप्रवाहम्,
वन्दे विष्णुं कपिलं वेदगर्भम् ॥*॥
(श्रीभा० ३ स्क० ३३ अ० ८ श्लो०)

छप्पय

कपिल रूप धरि ज्ञान जगत महँ परगट कीयो ।
जग रचिवे को ज्ञान दया करि अज कूँ दीयो ॥
उदर माँहि सब जीव जगत के जिनके नियसें ।
तेई लै अवतार उदर मेरे प्रभु प्रविसें ॥
पद पंकज कर कमल तें, धरि आनन अरविन्द में ।
चूसें वट के पत्र पै, बन्दौं पद गोविन्द मैं ॥

यह जीव भूखा प्यासा संसार मार्ग में भटक रहा है। प्यास में जिस पानी को देखता है, उसी की ओर दौड़ता है, उसे प्राप्त

* माता देवहूति अपने पुत्र कपिल भगवान्‌की स्तुति करती हुई कह- ती है—"प्रभो! आप इन्द्रियों की अन्तर्मुखी वृत्ति द्वारा अनुभव गम्य हैं, आप स्वयं साक्षात् परब्रह्म स्वरूप हैं, आपने अपने तेज द्वारा गुण प्रवाह को शान्त कर दिया है, वेदों की उत्पत्ति आपसे ही हुई है, ऐसे आप साक्षात् विष्णु रूप कपिल की मैं वन्दना करती हूँ।"

करता है, छूता है, संसर्ग करता है, मुख से लगाता है, शीतलता तो पानी का स्वाभाविक गुण है, उसका स्पर्श कुछ काल को अच्छा लगता है, शरीर से उसका सङ्ग करता है, जिह्वा से उसे चाटता है, किन्तु कोई जल खारा निकलता है, कोई दुर्गन्ध युक्त होता है, पानी तो उसे स्थान स्थान में मिलता है किन्तु वह पेय नहीं, उससे प्यास नहीं बुझती। पिपासा शान्त नहीं होती। यदि भाग्य वश उसे प्रेम पीयूष मिल जाय, मीठा जल प्राप्त हो जाय, तब उसकी पिपासा मिट सकती है। इसी प्रकार भूख से व्याकुल होकर इधर-उधर भटकता है, जिसे देखता है उसे ही चखता है, उसी का स्वाद लेता है, परन्तु उन पदार्थों से बुभुक्षा जाती नहीं, तृप्ति होती नहीं, कोई उसे जीवनमूरि मिल जाय, तो उसे खाकर उसकी भूख मिट सकती है, परितृप्ति हो सकती है। जिस जीव को प्रेमपीयूष अथवा जीवनमूरि भाग्य वश मिल गई वही जीव धन्य हो जाता है, वही अपने प्रेमास्पद की स्तुति कर सकता है और प्रेम होता है स्तुति करते रहने से ही, अतः सबको श्रद्धा पूर्वक भगवान् की स्तुति ही करनी चाहिये। चाहें सिद्ध हो अथवा साधक, चाहे बद्ध जीव हो, मुमुक्षु नित्य तथा मुक्त भक्त सभी का एकमात्र कर्तव्य भगवान् की स्तुति करना ही है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जीव भगवान् से प्यार करना चाहता है, किन्तु उसे भगवान् तो मिलते नहीं छटपटाता हुआ इधर से उधर दौड़ता है कभी स्त्री को छाती से चिपटाता है, कभी मित्र का अलिंगन करता है, कभी माता, पिता, भाई बन्धु, बहिन उनके समीप प्यार के लिए जाता है, किन्तु जैसा वह चाहता है, वैसा प्यार उसे इन सबके साथ कहीं मिलता नहीं, इससे तड़प तड़पकर रह जाता है। क्या करे जीव अवश है भगवान् स्ववश हैं, स्वतंत्र हैं किसी के बन्धन में नहीं। वे इसी साधन से रीझ जायँगे, इसी कार्य से प्रसन्न हो जायँगे, ऐसी बात कोई निश्चित रूप से

कह नहीं सकता। वे ही जब कृपा करें, वे ही जब अपनावें तभी उनकी प्राप्ति सम्भव है।

अहा! संसार में वे लोग धन्य हैं जिन्हें भगवान् किसी सम्बन्धी के रूप में मिल गये हैं। सम्बन्धियों में स्नेह वैसे ही स्वाभाविक होता है, यदि वही स्नेह उन अखिलेश्वर में दृढ़तर हो जाय तब तो बेड़ा पार ही है। जिन माताओंके परमेश्वर पति रूप से प्राप्त हुए हैं उनके भाग्य की तो सराहना की ही कैसे जाय? किन्तु उन में भी बड़भागी वे मातायें हैं, जिन्हे श्रीहरि पुत्र रूप से प्राप्त हुए हैं, पुत्र बनकर जिन्होंने केवल वात्सल्य सुख ही न देकर गुरुत्व के भार को वहन करके ज्ञानामृत को पिलाया है और ब्रह्म रूप से उन्हें साक्षात्कार करा के मोक्ष की अन्तिम पदवी तक पहुँचा दिया है। जो एक साथ ही पुत्र, गुरु और परब्रह्म तीनों ही स्वयं बन गये हैं। पुत्र रूप से जिन्होंने उनके उदर में निवास किया है बालक रूप में गोदी को अलंकृत किया है, गुरु बनकर अपनी जननी को ही ज्ञान सिखाया है और उन्हें अन्तिम पद तक पहुँचाकर अपने स्वरूप का अनुभव कराया है, उन माताओं ने स्त्री जाति को संसार में परम प्रतिष्ठा के पद पर पहुँचाया है। भगवती देवहूति उन्हीं माताओं में से हैं।

महामुनि कर्दम का विवाह जब भगवती देवहूति के साथ हो गया और उनके गर्भ से ९ कन्यायें हो गयीं तब उनके उदर से भगवान कपिल अवतीर्ण हुए। वे भगवान के ज्ञानावतार थे, संसारमें ज्ञानका प्रचार प्रसार करने ही के लिये वे अवतरित हुए थे। कर्दम मुनि भगवान से आज्ञा लेकर तपस्या करने वन में चले गये। अब माँ देवहूति ने सोचा—"परमेश्वर को पुत्र पाकर मैं ही इन विषय भोगों में क्यों लिप्त बनी रहूँ. यही सोचकर उन्होंने पुत्र रूप में अवस्थित परमेश्वर से ज्ञान दान की याचना की। भगवान कपिल ने उन्हें ज्ञान, भक्ति तथा योग का उपदेश दिया। उसे सुन

कर माँ कृतार्थ हो गयी। सिद्धा बन गई, उसे अब जानने को कुछ भी शेष नहीं रहा। जिन पुत्र रूप में प्राप्त ज्ञानदाता गुरु की कृपा से उनका मोह रूप आवरण हटा था उन सांख्य द्वारा सिद्धि प्राप्त करने वाले भगवान् कपिल के पाद-पद्मों में प्रणाम करके कृतज्ञता प्रकाशनार्थ प्रार्थना करती हुई कह रही हैं।

माँ देवहूति ने कहा—"प्रभो! आप मेरे नहीं हो, सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र पिता आप ही हो, सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति तो प्रजापतियों द्वारा हुई है। प्रजापति ब्रह्माजी के पुत्र हैं और ब्रह्माजी आपकी नाभि से उत्पन्न होने वाले कमल से प्रकटे हैं वे आपके पुत्र हैं. इसलिये आप इस जगत् के प्रपितामह हैं। आपने लीलार्थ मनोविनोद के लिये जब सृष्टि रचना की इच्छा की, तब आपकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ और उसमें से चतुरानन ब्रह्माबाबा उत्पन्न हो गये। उस समय उन्हें चारों ओर जल ही जल दिखायी देता था। ब्रह्माजी ने अपने जनक आपको जानने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु उन्हे आपके दर्शन नहीं हुए। जब वे बाहर खोजते-खोजते थक गये तब उन्होंने सम्पूर्ण कार्य-कारण वर्ग के बीज रूप आपका अपनी अन्तरात्मा में ही ध्यान किया। आपके दर्शन सबको नहीं हो सकते। जो आपके सगे पुत्र हैं, चराचर विश्व को रचने वाले हैं, उन ब्रह्माजी को भी जब आपके प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो सके तो अन्य प्राणी अपने पुरुषार्थ से आपको कैसे प्राप्त कर सकते हैं?

प्रभो! आप प्रलयकालीन जल में शेष की सुन्दर सुखकर मृदुल चिकनी शय्या पर सुखसे सोते रहते हैं। आप ही निखिल-विश्व के आदि कारण हैं। पाँचों भूत, दशों बाह्य इन्द्रियाँ, चारों भीतर की इन्द्रियाँ अर्थात् अन्तःकरणमय हैं। आपसे ही ये सब उत्पन्न होते हैं। सत्वादिगुणों का प्रवाह आपसे प्रवाहित होता है। वास्तव में तो आप निष्क्रिय हैं, सभी प्रकार की क्रियाओं से

सर्वथा रहित हैं, सत्य संकल्प हैं, आपका संकल्प कभी नहीं होता। जो संकल्प करते हैं, तत्क्षण मूर्तिमान् हो जाता है समस्त देहधारी प्राणियों के अन्तरात्मा हो, साक्षी हो, हो। आपकी शक्तियाँ अचिन्त्य हैं, अतर्क्य हैं तथा अनन्त है आप महान् से भी महान् शक्तिशाली हो। आपकी अनन्त ही गुण प्रवाह में प्रवाहित होकर नानाप्रकार की सृजनशक्तियों रूप में विभक्त हो जाती हैं, जिससे इस चराचर जगत् उत्पत्ति होती है।

हे नाथ! हे जगदाधार! हे जगन्नियन्ता! हे विश्वम्भर मुझे कहने में लज्जाआती है, कि आपने मेरे उदर से जन्म लिया प्रभो! प्रलयकाल के समय यह सम्पूर्ण दृश्यप्रपञ्च आप के उदर में विलीन हो जाता है। निखिल विश्वब्रह्माण्ड को करके आपशेषशय्यापर सो जाते हैं। फिर आनंदके लिये, लिये, विनोदके लिये लीला करने के निमित्त अक्षयवट के पर बालक बन कर-नन्हें से शिशुका रूप रखकर-करार विन्द पदारविन्द के अँगूठे को मुखारविन्द में देखकर नयनारविन्दों निहारते हुए, उस अँगूठे को चूसते हुए हँसते रहते हैं। अग ब्रह्माण्ड जिनके उदर में भरे रहते हैं वे ही विश्वोदर मेरे उदर उत्पन्न हों, यह विडम्बना नहीं तो क्या है? यह हँसी की बात नहं है, हास्यास्पदप्रसङ्ग नहीं है, विश्व विधाता ब्रह्मा जिनका हो वे मेरे पुत्र बनें इसे कौन विश्वास करेगा?

स्वामिन्! आप अशरीरी को शरीर धारण करने आवश्यकता ही क्या है? फिर भी आप शरीर धारण करते हैं। हे अच्युत! आपका पद तो विच्युत है अविकृत है, उसमें विकृति की सम्भावना ही नहीं। फिर भी आप अवनि पर अवतरित होते हैं। प्रभो! आपको कोई कर्तव्य नहीं, आप

कर्तव्याकर्तव्य से रहित हैं, फिर भी सज्जन संरक्षण तथा दुष्ट-दमन रूप कार्य अवतार धारण करते ही हैं। आप कभी वाराह बन जाते हैं, कभी कच्छ मच्छ का रूप रखलेते हैं, कभी आधे सिंह और आधे पुरुष बन जाते हैं, कभी कोई अवतार ले लेते हैं, अबकी आपने कपिल रूप में अवतार लिया है, मेरे कोखको कृतार्थ किया है। हे प्रभो ! आपके पाद-पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है। यह आपका ज्ञानावतार भूले भटके मुमुक्षु जनों को ज्ञानमार्ग दिखाने के निमित्त हुआ है। अज्ञान के कारण जिनकी आँखों के आगे अन्धकार छाया है, उस ज्ञानाञ्जन शलाका से मिटाकर ज्ञानालोक दिखाने के निमित्त हुआ है। स्वामिन् ! आप ज्ञान रूप हैं, सच्चिदानन्द स्वरूप हैं। मुमुक्षुओं की एकमात्र शरण हैं। हे शरणागतवत्सल ! आप को बारम्बार नमस्कार है।

हे पतित पावन ! जिनको आपके स्वयं साक्षात् दर्शन हो जाते हैं, उनकी कौन गति प्राप्त होती है, इसे बताना तो मेरी बुद्धि के बाहर की बात है, किन्तु कोई कैसा भी पुरुष क्यों न हो, सबसे गर्हित अस्पृश्य पशु श्वान है, वह सबसे अपवित्र वस्तु विष्ठा खाता है, सज्जन पुरुष उसे छूते नहीं, उस कुत्ते को भी जो मारकर खा जाते हैं उसके मांस को भी जो खाने के लिये पचाते हैं वे श्वपच कहलाते हैं। मनुष्यों में श्वपचों से अधम और कोई नहीं। वे श्वपच भी केवल आपके श्रुत मधुर नामों का श्रद्धा सहित कीर्तन करें, आपकी वन्दना करें, आपके अवतार रूप का चिन्तन करें, तो वे भी यज्ञ के अधिकारी बन सकते हैं। यह सामर्थ्य तो आप के नाम संकीर्तन में हैं, फिर जिन्होंने आपके साक्षात् दर्शन कर लिये हैं उनकी कृतकृत्यता में तो सन्देह ही क्या है, मुझे आपके दर्शन हो गये, मैंने भूमि में सिर टेककर

आपको प्रणाम किया, फिर मेरा कल्याण तो हो ही जायगा। कल्याण स्वरूप ! आपको बारम्बार नमस्कार है।

प्रभो ! आपकी महिमा तो बुद्धि के परे की बात है, आपके नाम की महिमा ही इतनी अद्भुत है, कि प्राणी उसका भी अनुमान नहीं कर सकता। उसका भी पार नहीं पा सकता। जिसकी जिह्वा पर आपका श्रुत मधुर त्रैलोक्य पावन नाम विद्यमान् है, वह जातिका भले ही चाण्डाल भी क्यों न हो वह भी सर्वश्रेष्ठ है किन्तु जो आपके नाम से विमुख हैं, नाम संकीर्तन के द्वेषी हैं, उनका जन्म चाहे कितने भी उच्चकुल में हुआ हो, वे भी अधमाति अधम हैं। स्वामिन् ! आपके नाम का जो उच्चारण करते हैं, जिनकी जिह्वा पर आपके पावन नाम क्रीड़ा करते रहते हैं, जिनकी जिह्वा निरन्तर आपके श्रुत मधुर नामों का उच्चारण करती रहती हैं, उन्हीं को लेती रहती हैं. मानव जीवन का समस्त फल तो उन्हीं भाग्यशालियों ने प्राप्त किया है। वास्तव में उन्होंने ही तप किया है, पूर्वजन्मों की घोर तपस्या के फल स्वरूप ही जिह्वा से भगवन्नाम का उच्चारण हो सकता है। जिनके पूर्वजन्म के सुकृत नहीं हैं उनकी रुचि आपके नाम संकीर्तन में हो ही नहीं सकती। भाग्यशालियों की ही जिह्वा से आपका नाम निकल सकता है यज्ञ याग हवन करना उन्हीं का सार्थक है जो आपके नामों को निरन्तर गाते रहते हैं। तीर्थस्नान तथा दान की सार्थकता इसी में है कि आपके नामों में अनुराग हो। तीर्थस्नान उसी का सार्थक है जो नामानुरागी हो। वेद पाठ का भी एकमात्र फल यही है, कि आपके कीर्तन में प्रेम हो जाय। हे जगदुद्धारक ! आपके नाम गान में कितनी महान् शक्ति है इसे कोई कह नहीं सकता। इसलिये मेरी जिह्वा से निरन्तर आपके नामों का उच्चारण होता रहे यही मेरी प्रार्थना है। आपके पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

हे आनन्दघन! हे निर्धनों के धन! हे कमललोचन! हे जन मनरंजन! हे कृपायतन! हे त्रिभुवनशरण! हे मदनमोहन! आप वाह्येन्द्रिय के विषय नहीं हैं। योगीजन ध्यान समाधि द्वारा अन्तःकरण की अन्तर्मुखी वृत्ति द्वारा आपका अपने अन्दर अनुभव करते हैं, आप अपने तेज से गुण-प्रवाह को शान्त करने में सर्वथा समर्थ हैं, समस्त वेदों के उत्पत्ति स्थान प्रकट होने के मूलस्रोत आप ही हैं आप स्वयं साक्षात् सच्चिदानन्द स्वरूप परिपूर्ण परब्रह्म हैं। आप अनादि अनन्त पुराणपुरुष हैं। इस समय हे विष्णो! आपने कपिलावतार धारण किया है। मुमुक्षुओं को ज्ञान दान देने के निमित्त वेष बना लिया है। ऐसे कपिलावतार भगवान् विष्णु के पादपद्मों में बारम्बार नमस्कार है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! माता देवहूति ऐसी स्तुति करके ध्यान मग्न हो गयीं और वह पदवी प्राप्त की जिसकी समता वेद पुराणों में मिलनी दुर्लभ है। उनका पांचभौतिक शरीर एक परम सिद्धिदायिनी सिद्धसेविता सर्वश्रेष्टा सरिता के रूप में परिणत हो गया। यह मैंने आपसे देवहूति कृत कपिल भगवान की स्तुति कही, अब आप दक्ष यज्ञ विध्वंस के अनन्तर शिवजी को मनाने को जैसे ब्रह्मादि देवगण मिलकर कैलाश पर्वत पर गये और वहाँ जिस प्रकार उन सबने शिव स्तुति की उस पुण्य प्रसङ्ग को सुनिये।

छप्पय

सत पुरुषनि सुख दैन दमन दुष्टनिको करिवे।
लेउ अलख अवतार भार भू को हरि हरिवे॥
जिनको लै शुभ नाम श्वपच हू पावन ह्वैं।
लीयो नहिं जिनि नाम व्यरथ नर जीवन खोवें॥

वेदगरम सुख शान्ति कर, शंकर शोभा धाम हैं।
कपिल देव पदपदुम महँ, पुनि पुनि पुन्य प्रनाम हैं॥

पद

कपिल मुनि प्रभु तुम वेष बनायो।
जगत नियन्ता सत्संकल्पा, सतचित वेदनि गायो ॥१॥ कपिल०
ब्रह्मा नाभि कमल तें प्रकटे, गुननि प्रवाह बहायो।
रूप अरूप धारि जग जनमे, नाम कपिल कहलायो ॥२॥ कपिल०
बनि बालक बिहरो वट पुट पै, निगलि जगतकूँ जाओ।
काल पाइ के प्रकटो प्रभुजी, दासनि दरस दिखाओ ॥३॥ कपिल०
माया कठिन जीव जग भरमै, सत-चित रूप भुलायो।
शरन गही प्रभुपद पदुमनिमें, बार बार सिर नायो ॥४॥कपिल०

देवहूति कृत कपिल स्तुति

देवहूतिरुवाच

अथाप्यजोऽन्तःसलिले शयानं,
भूतेन्द्रियार्थात्ममयं वपुस्ते ।
गुणप्रवाहं सदशेषबीजं,
दध्यौ स्वयं यज्जठराब्जजातः ॥१॥

स एव विश्वस्य भवान् विधत्ते,
गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः ।
सर्गाद्यनीहोऽवितथाभिसन्धिः;
आत्मेश्वरोऽतर्क्यसहस्रशक्तिः ॥२॥

स त्वं भृतो मे जठरेण नाथ,
कथं नु यस्योदर एतदासीत् ।
विश्वं युगान्ते वटपत्र एकः,
शेते स्म मायाशिशुरङ्घ्रिपानः ॥३॥

त्वं देहतन्त्रः प्रशमाय पाप्मनां,
निदेशभाजां च विभो विभूतये ।
यथावतारास्तव सूकरादयः,

तथायमप्यात्मपयोपलब्धये ॥४॥

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद्,
यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित् ।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते,
कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ॥५॥

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्,
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या,
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥६॥

तं त्वामहं ब्रह्म परं पुमांसं,
प्रत्यक्स्रोतस्यात्मनि संविभाव्यम् ।
स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाहं,
वन्दे विष्णुं कपिलं वेदगर्भम् ॥७॥

देवों द्वारा देवाधिदेव महादेवजीकी स्तुति

[२५]

जाने त्वामीशं विश्वस्य जगतो योनि बीजयोः ।
शक्तेः शिवस्य च परं यत्तद्ब्रह्म निरन्तरम् ॥❀
(श्रीभा० ४ स्क० ६ अ० ४२ श्लो०)

छप्पय

दक्ष यज्ञ विध्वंस भयो अज-संग लिये सुर ।
गये शरन कैलाश करें इस्तुति अज सुखकर ॥
योनि बीज शिव शक्ति परे प्रभु जगत बनाओ ।
मकरी सम जग पूरि निगलि पुनि सबकूँ जाओ ॥
फल दाता सर्वत सबल, नित्यनिरञ्जन गुन रहित ।
शङ्कर हर पङ्कज पदनि, बार बार वन्दन करत ॥

सत् पदार्थ एक ही है, उसे विद्वान् बहुत नामों से पुकारते हैं। उसका न कोई एक नाम है न एक रूप। जैसे एक चक्रवर्ती राजा है, वह कुछ काम नहीं करता। उसकी शक्ति उसका दण्डभय, उसका अस्तित्व ही सब काम कराता रहता

❀ ब्रह्मादि देव शिवजी की स्तुति करते हुए कह रहे हैं—"हे देव! हम आपको जानते हैं, आप जगत्के ईश हैं, जगत्की योनि शक्ति (प्रकृति) और उसका बीजशिव (पुरुष) इन दोनों से परे अन्तर-रहित सनातन परब्रह्मपुरुषोत्तम हैं।"

है। वह स्वयं किसी अधिकार पर आरूढ़ नहीं होता। निर्माण विभाग का अधिकारी पृथक् है। प्रतिरक्षा विभाग, यातायात, रक्षा, स्वास्थ्य, जन कल्याण आदि प्रजाके हित के अनेकों विभाग हैं, उन सब विभागाध्यक्षों में शक्ति उसीकी काम करती है। न्यायाध्यक्ष निर्णय करेगा तो उसीके नामसे उसीके शक्तिसे कोई अभियोग चलेगा। वादी प्रतिवादीमें सम्राट्का नाम रहेगा। हानि लाभ सब उसीको होगी। सम्राट् चाहे तो किसीएक विभागका या सभी विभागों का स्वयं अधिकारी भी बन सकता है, किन्तु उसका सम्राट्पना सुरक्षित रहेगा, अधिकारी बन जाने से उसके रूप में, अधिकार में, शक्ति में नाम में तथा प्रभाव में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। उस सम्राट् को भावानुसार अनुकूल प्रतिकूल सम्बन्धों से लोग अनेक नामों से पुकारेंगे। उसकी माँ उसे बेटा कहेगी। अपने पुत्रों से वह बेटा कहेगा। उसकी महारानी का भाई उसे बहनोई करके पुकारेगा। उसकी बहिन का पति उसे साला कहेगा। इस प्रकार अनेक सम्बन्धों से एक को ही बहुत नामों से पुकारते हैं।

इसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा, सर्वनियन्ता, सर्वसाक्षी, सर्वगत, निरञ्जन, निराकार, निर्विकल्प, निरावयम, नित्य, निरन्तर एक ही हैं। वे संसार से सर्वथा पृथक् हैं। वे सृष्टि स्थिति तथा प्रलय आदि कार्यों से सर्वथा निर्लिप्त हैं। ये सब काम उसीकी प्रेरणा, उसी के संकल्प तथा उसी की शक्ति से हो रहे हैं। उसी के दिये हुए अधिकार से उनकी दी हुई शक्तिके उसीके रूपमें अधिकारी कार्य कर रहे हैं। कोई किसी अधिकारी के पास प्रार्थना पत्र भेजेगा, तो घूम फिरकर अन्त में पहुँचेगा उसी के पास। कोई सीधा प्रार्थनापत्र भेजते हैं, तो सीधा उसे ही मिल

जाता है और कोई छोटे से छोटे या बड़े से बड़े अधिकारी के पास भेजता है, तो वह भी विभागोंमें होता हुआ उसीके पास पहुँचेगा। एक तो यह है, कि आप पानी का घड़ा लेकर गये समुद्र में डाल आये, सीधा समुद्र में पहुँच गया। दूसरा क्रम यह है कि आप जहाँ भी कहीं मरुभूमि में, पहाड़ पर, उर्वरा भूमि में समुद्र से कितनी भी दूर कहीं भी जलको फेंक दो तो वह पहुँचेगा समुद्र में ही। मान लो आपने एक घड़ा पानी गङ्गोत्री से गङ्गाजी में फेंक दिया तो वह बहता हुआ समुद्र में ही पहुँचेगा उससे पहिले कहीं रुक ही नहीं सकता। आपने गङ्गाजी में न फेंककर, कूएँ में फेंक दिया. तो भी वह किसी न किसी प्रकार समुद्र में पहुँचेगा। आपने बालूमें फेंक दिया. तो बालूसे सूर्य उसे शोष लेगा, उसे समुद्र में बरसा देगा। या किसी तालाब, क्षुद्र नदी में वर्षा देगा। तालाब से क्षुद्र नदी में आवेगा, उससे बड़ी नदी में बड़ी नदी से,महानदी में,और महानदीसे समुद्रमें मिलेगा। जब तक वह समुद्र में मिल न जायगा। शान्त न होगा। इसी प्रकार आप छोटे बड़े किसी को भी नमस्कार करो अन्त में पहुँचेगा उन्हीं प्रभुके पास।*

कोई भगवान् को शक्ति रूप में पुकारते हैं, उनका कहना है कि भगवती. काली, शिवा, रुद्राणी, ब्रह्माणी, कमला, विमला, शची आदि जितनी शक्तियाँ हैं सब उन्हीं के अंश हैं। जो इन सबमें शक्ति प्रदान करती हैं, वे ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा अन्य सभी भूतों में शक्ति देनेवाली महाशक्ति इनसे पृथक् हैं। कोई कहते हैं सृष्टि का कार्य ब्रह्मा करते हैं। पालन का कार्य विष्णु करते हैं. संहार का काम शिव करते हैं।

---

* आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेव नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति॥

इन सबके जनक "महाविष्णु" इनसे पृथक् हैं। दूसरे कहते हैं, त्रिदेवों द्वारा कार्य हो रहा है, संहार करनेवाले शिव तो प्राणिविनाशक रुद्र हैं। इन त्रिदेवों के भी जनक महाशिव देवाधिदेव महादेव पृथक् हैं। इसी प्रकार सूर्य से पृथक् प्रकाशदाता महासूर्य, विघ्नविनायक गणपति से पृथक् महागणपति पृथक् हैं। चाहे महाशक्ति कहो, महाशिव कहो, महाविष्णु कहो, महागणपति कहो अथवा महासूर्य कहो। ये सब एक के ही नाम हैं, भावानुसार, अपनी अपनी मति के अनुसार एक ही शक्ति को विविध रूपों से पूजते हैं, विविध नामों से पुकारते हैं। कभी तो कहीं शिवजी विष्णु की स्तुति करते हैं, कभी विष्णु शिवकी। कभी शिवजी जाकर ब्रह्माजी की विरुदावली गाते हैं, उन्हें पिता कहकर प्रणाम करते हैं, कहीं स्वयं ब्रह्माजी जाकर अपने से ही उत्पन्न शंकरजीको सबसे श्रेष्ठ सबके जनक, सबके पिता कहकर उनकी स्तुति करते हैं। अतः किसी को यह शंका न करना चाहिये अमुक देव श्रेष्ठ है अमुक निकृष्ट। श्रेष्ठ तो एक ही देव है। उसके नाम रूप या तो अनेक हैं या वह नाम रूप से सर्वदा रहित है। कहीं भी स्तुति करो, पहुँचेगी उन्हीं के पास किसी भी नाम रूप से विनय करो, मिलेगी उसी के लिये। जैसे हमने पिता को प्रणाम किया, तो हमारे पिता ने वह प्रणाम लेकर अपने पिता को दे दी। उन्होंने अपने पिता को, उन्होंने अपने पिता को इस प्रकार परम्परा से चलती चलती ब्रह्माजी के पास पहुँच गयी। ब्रह्माजी ने उसे अपने पिता परम पिता परमात्मा को प्रदान कर दी। यहाँ से आगे कोई धाम नहीं, कोई स्थान नहीं, परम पिता ने उसे स्वीकार करके अपने पास रख ली। इसीलिये कहा है कुत्ता, चाण्डाल, गौ, गदहा अथवा कोई भी छोटा बड़ा जीव क्यों न हो, उसके लिये भूमि में लेटकर दण्डवत्

प्रणाम करनी चाहिये। सबमें भगवत् बुद्धि हो जाय यही प्रणाम करने का प्रयोजन है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! ब्रह्माजीने दक्ष प्रजापति को समस्त प्रजापतियोंका पति बना दिया। तब उन्हें अहंकार होगया,कि सभी मुझे प्रणाम करें। भोले बाबा शिवजी ने कहा हम अहंकार की सिर नवाकर पूजा नहीं करेंगे, उसकी पूजा तो सिर में डंडा मार कर ही की जाती है। आप ब्राह्मण की पूजा करें तो उसे मिष्टान्न खिलाइये गौमाता को पूजा करनी हो घास खिलाइये। ब्राह्मण की पूजा घास खिलाने से नहीं होगी। इसीलिये शिवजी ने अभिमानी दक्ष को सिर नहीं झुकाया। बात बहुत बढ़ गयी, शिवजी का देव समाज से बहिष्कार किया गया। अपनी पुत्री शिवपत्नी शिवा को भी दक्ष ने अपने यज्ञ में नहीं बुलाया। पितृ स्नेह से बिना बुलाये शिवजी के मना करने पर भी सती दक्षयज्ञ में गयीं। वहाँ शिवजी का भाग न देखकर भस्म हो गयीं। सब समाचार सुनकर शिवजी ने अपनी जटा से वीरभद्र को उत्पन्न किया। उसने अन्य रुद्रानुचरों के साथ जाकर यज्ञको विध्वंस किया। दक्ष का सिर काट लिया। अन्य सभी शिव द्रोही देवता ऋषि मुनियों की भली भाँति कुटाई की। उनके अङ्ग भंग कर दिये। तब वे मार खाकर दुखी हो ब्रह्माजी को आगे करके कैलाश में शिवजी की शरण में पहुँचे और सबकी ओर से जगत् जनक ब्रह्माजी शिवजी की स्तुति करते हुए कह रहे हैं।"

ब्रह्माजी ने कहा—"हे देवाधिदेव! हे कल्याणकर्ता! और कोई भले ही जानें न जानें, किन्तु मैं तो जानता ही हूँ। चराचर विश्व के दृश्य जगत् के सम्पूर्ण प्रपञ्च के एकमात्र हो। आपके बिना न सृष्टि हो सकती है न हुई स्थिति हो सकती है और न संहार संभव है। यह सम्पूर्ण संसार है

शिवकी क्रीड़ास्थली है, प्रकृति पुरुष का खेल है। स्त्री पुरुष रमण स्थली है। आप न प्रकृति हैं, न पुरुष हैं, इन दोनों से महापुरुष हैं। आप न शिव हैं, न शक्ति हैं. इन दोनों से ही महाशिव अथवा महाशक्ति हैं। आप न स्त्री हैं, न पुरुष हैं. सबसे उत्तम पुरुषोत्तम हैं। आपमें भेदभाव नहीं, द्वैत नहीं, तो भेदभाव से रहित अद्वय सनातन परब्रह्म हैं। अतः बारम्बार नमस्कार है।

हे प्रभो ! जिस प्रकार मकड़ी जब चाहती है अपने पेट से निकालकर जाला बुन लेती है जबतक चाहती है उसमें क्रीड़ा है और जब इच्छा होती है उस सबको स्वयं ही निगल भी है। इसी प्रकार आप जब चाहते हैं जगत् को बना लेते हैं,जब इच्छा होती है इसकी रक्षा करते हैं, जब मनमें आता है इस पसारे को समेटकर अपने में लीन करके सुख से सो जाते आपके ऊपर कोई नहीं है जो आपके कार्य में, संकल्प में, क्षेप करे। प्रकृति पुरुष, शिवशक्ति, जनकजननी, रजबिन्दु, तथा बीज ये सब आपके अपने ही स्वरूप हैं। इन्हीं के आप उत्पत्ति स्थिति और संहार करते रहते हैं।

हे यज्ञ स्वरूप ! यज्ञके उत्पन्नकर्ता भी तो आप ही हैं। द्वारा पुरुष अपने अभीष्ट को प्राप्त कर सकें, धर्म अर्थ तथा की प्राप्ति हो सके, वेदों की रक्षा हो सके इसके निमित्त आपने तो यज्ञयागों का प्रचार प्रसार किया है। यथार्थ यज्ञकर्ता यज्ञफल भोक्ता तो आप ही हैं। यह दक्ष तो केवल f था। धर्म की मर्यादा का उत्पत्ति स्थान भी आप ही हैं, ही समस्त मर्यादायें बाँधी हैं, ब्राह्मणगण तो केवल उनका की आज्ञा से श्रद्धापूर्वक पालनमात्र करते हैं।

हे मङ्गलों के मङ्गल ! हे आनन्दमय ! हे क

मंगल मय ! पुण्य और पाप की रचना भी आपके ही द्वारा हुई है, स्वर्ग और नरक को भी आप ने ही बनाया है, पुण्य और पाप करने की प्रेरणा भी आपसे ही प्राप्त होती है। पुण्य करनेवालों को स्वर्ग सुख भी आप ही भुगाते हैं, पाप करने वालों को नरक पठाकर उन्हें यम यातना भी आप ही दिलाते हैं। मोक्ष के दाता भी आप ही हैं। कहीं कहीं इसके विपरीत भी देखा गया है, निरन्तर दान देने वाले को दान जैसे पुण्य कर्म को करने वाले को गिरगिट बनना पड़ता है। इस यज्ञ में भी हम ऐसी विपरीतता पाते हैं। यज्ञ जैसे पवित्र कार्य को करते समय दक्ष का सिर कट गया, यज्ञ विध्वंस हो गया, देवता गये थे तो यज्ञ में अपना भाग लेने किन्तु मिली उन्हें आपके गणों द्वारा बिनाभाव की पिटाई। ऋत्विजों को दक्षिणा के स्थान में कुटाई कुकाई मिली। इस विपरीतता के रहस्य को तो आप ही समझ सकते हैं।

हे मन्यु रहित महेश्वर ! यह कहें कि यह सब क्रोध के कारण हुआ तो क्रोध भी तो आपका ही रूप है। आप कह सकते हैं, क्रोध मेरे अधीन है, मैं कुछ क्रोध के अधीन नहीं हूँ, मेरे गणों ने क्रोध के अधीन होकर यह सब उपद्रव कर डाला। सो, यह भी सम्भव नहीं। क्रोध होता है कामना के व्याघात से, क्रोध आता है अहंकार से, क्रोध आता है अपने को ही कर्ता मानने से, क्रोध आता है पृथक् भाव देखने से, प्राणियों में भेद भाव रखने से। जिन पुरुषों ने अपना सर्वस्व शिव स्वरूप आपको समर्पित कर दिया है। जिन्होंने अपनी अन्तरात्मा को आप अनादि अज को अर्पण कर दिया है, जो चराचर विश्व में सम्पूर्ण प्राणियों में सवत्र आपको ही विराजमान देखते हैं तथा जो निखिल विश्व को, समस्त जीवों को अपृथक् भाव से अपने में ही अध्यस्त देखते हैं, उन्हें भला क्रोध कैसे

आ सकता है। प्रायः वे क्रोध के अधीन होते नहीं आपके अनुगत अनुचर रुद्रगण क्रोध के वशीभूत होकर यज्ञ विध्वंस रूपी कुकृत्य कभी कर नहीं सकते। यह तो पशु बुद्धि है आप पशुपति हैं। डंडा लिये हुए पशुओं के पीछे रहते हैं, अत इस यज्ञ विध्वंस में भी कोई कारण है।

हे दंड धर! संसार में सभी प्रकार के प्राणियों को आप पशु पति ने पैदा कर दिये हैं। कुछ साधु प्रकृति के पुरुष सब आप परम पुरुष के ही चिन्तन में लगे रहते हैं, सर्वत्र आप का ही साक्षात्कार करते हैं, किन्तु कुछ कुत्सित मति वाले भिन्न बुद्धि के भी होते हैं। वे भाव की शुद्धता पर ध्यान नहीं देते, केवल कर्म में ही आस्था रखते हैं, किसी भी कर्म से शत्रु को हानि पहुँचायी जाय, मेरे विपक्षी का पराभव हो, मेरा उत्कर्ष बढ़े, मुझे ही सब सर्वश्रेष्ठ समझें। ऐसे भावों से उनका चित्त दुष्ट हो जाता है। उनके अन्तःकरण में ईर्ष्या समा जाती है, वे दूसरों के उत्कर्ष देख नहीं सकते। दूसरों की बढ़ती को सहन करने में समर्थ नहीं होते दूसरों की उन्नति देखकर मन ही मन जलते हैं, कुढ़ते रहते हैं, अशान्त बने रहते हैं। वे ईर्ष्यालु पुरुष दूसरों के हृदयों को मर्मस्पर्शी वाणी द्वारा बेधते रहते हैं। उनके मुख से अहंकार भरी ईर्ष्या के विष में बुझी वाणी ही निकला करती है। अपने दुर्वचनों से दूसरों के अन्तःकरण को दुखी ही बनाते रहते हैं। पूर्वकृत कुकर्मों से उनका अन्तःकरण कलुषित हो गया है, प्रारब्ध ने उनकी बुद्धि विपरीत बनादी है। भाग्य ने उनकी दुर्दशा कर दी है, अभागे तो दैव द्वारा ही दंडित हैं। आपको तो ऐसे दैवहत जीवों पर दया ही दर्शानी चाहिये। आप ही उनकी उपेक्षा करेंगे या कठोर दन्ड देंगे तो उनका निस्तार कैसे होगा? हे पालक

प्रभो! ऐसे नराधमों को नष्ट करने का प्रयत्न आपको नहीं करना चाहिये।

स्वामिन्! यह जीव माया के चक्कर में फँस गया है, आप से विमुख बन गया है। विपरीत मार्ग की ओर चल पड़ा है। आपकी दुरत्यया दैवी माया से इसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। वे जीव जीव में भेद मानते हैं। वे सज्जन पुरुषों की सदा निन्दा करते हैं। अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के निमित्त साधु पुरुषों को बुरा भला कहते हैं, उन्हें कोसते हैं, उनका अपराध करते हैं। वे चाहें अपने धर्म से च्युत भले ही हो जायँ, किन्तु साधु पुरुष अपने स्वभाव के विपरीत बर्ताव नहीं करते। वे उन निन्दकों पर भी कृपा ही करते हैं, अपराध करने वालों को भी क्षमा ही कर देते हैं। अपने दयालु स्वभाव के कारण उनके प्रति दया ही दर्शाते हैं। कृपादृष्टि से उन पर प्रेम की वृष्टि ही करते हैं। वे समझ लेते हैं, यह जो हमें बुरा भला कह रहा है दुःख दे रहा है, यह भी हमारे कर्मों का भोग है। सुख दुःख को दैवाधीन समझकर उनपर कोप नहीं करते उनका किसी प्रकार का अनिष्ट, अहित नहीं करते।

हे प्रभो! हे दयासागर! आपसे कोई बात छिपी तो है नहीं। आप घट-घट की बात जानते है, आप सर्वज्ञ तथा सर्वदृक् हैं। आप परम पुरुष अपनी माया के चक्कर में नहीं आते। दूसरों के लिये आपकी माया दुरन्त दुस्तर भले ही हो, किन्तु आपकी बुद्धि का तो वह स्पर्श भी नहीं कर सकती। आप तो शुद्ध बुद्ध तथा माया गुणों से सर्वथा रहित हैं। जिनका चित्त माया के चक्कर में फँस गया है और निरन्तर कर्मों के ही अधीन रहते हैं कर्म मार्ग में ही जिनकी आसक्ति बढ़ गयी है उनपर तो आपको कृपा करनी चाहिये, दया दिखानी चाहिये।

हे मननशील ! हे मनुओं के भी मनु ! हे प्रजापतियों के भी बनानेवाले ! जो बात हो गयी सो हो गयी, उसे अब आप भुला दें। आपके गणों द्वारा जो दक्षका यज्ञ विध्वंस हो गया है, उसे पुनः सम्हलवा दें, उसकी सानन्द समाप्ति करा दें। इसका पुनः उद्धार करा दें।

स्वामिन् ! अपराध सब दक्ष का ही है। दक्ष का भी क्या अपराध है। इन स्वार्थी याजकों ने उसकी बुद्धि को विपरीत बना दिया था। खेत में से ही तो अन्न लेने जायँ और क्षेत्राधिप की ही उपेक्षा करें। मन्दिर में ही तो पूजा करने जायँ और मन्दिर की मूर्ति से ही द्वेष करें। गङ्गाजी में ही स्नान करने जायँ और गङ्गाजल का स्पर्श न करें तो ऐसे कुबुद्धियों को कभी फल मिल सकता है। समस्त यज्ञों के अधीश्वर तो आप और यज्ञ में आपकी ही उपेक्षा की जाय, आपकी पूजा न हो तो वह यज्ञ कैसे सफल होगा ? यज्ञ भाग के एकमात्र अधिकारी तो आप ही हैं और आपको ही यज्ञ भाग से वञ्चित रखा गया उसकी तो ऐसी दुर्गति होनी ही थी।

हे देव ! अब आप दया कीजिये, बिगड़ी को बना दीजिये। अपराधों की ओर ध्यान न दें। यज्ञ के यजमान का जो वीरभद्र ने सिर काटकर जला दिया है, प्राणहीन हो गया है वह फिर से जीवित हो उठे। भगदेव के जो नेत्र फूट गये हैं वे पुनः देखने लगें। भृगु की दाढ़ी मोंछ सफाचट हो गयी है वह पुनः उपज आवे पपले दाँत वाले पूषा जिनकी बत्तीसी गणों ने झाड़ दी है। उनके भोजन का कोई डौलडाल बैठा दीजिये। अधिक क्या कहें देवता ऋत्विज् तथा अन्य जो भी घायल हुए हैं जिनके जो अङ्ग भंग हुए हैं, उन सबके अङ्ग ज्यों के त्यों हो जायँ, सब स्वस्थ नीरुज तथा निरोग बन जायँ। यज्ञ पूर्ण होने पर जो भी कुछ शेष रहे वह सब भाग आपका ही है। शेष भाग

वो गृहपति का होता ही है ? कंगालों को बाँट देने के अनन्तर जो बच जाता है उस सब पर स्वत्व तो स्वामी का ही होता है। अब यह यज्ञ सम्पूर्ण आपके ही भाग से पूर्ण हो।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! ब्रह्मादि देवों की स्तुति सुनकर शिवजी ने 'तथास्तु' कह दिया। इस प्रकार मैंने आपसे यह शिवजी की स्तुति कही। अब मधुवन में तपस्या करते समय ध्रुवजी के आगे जैसे भगवान् प्रकट हुए और ५ वर्ष वाले ध्रुव जीने उनकी जैसी दिव्य स्तुति की उसका वर्णन मैं आगे करूँगा। इस स्तुति में सभी शास्त्रों का सार है।

छप्पय

क्रोध भेद तैं होहि भेद तुमसे नहिँ स्वामी।
आपु अखिल अद्वैत आदि अज अन्तरयामी॥
जो अबोध अति अज्ञ कृपा तिनि पै प्रभु कीजे।
पूरन होवे यज्ञ दक्ष जीवैं वर दीजे॥
हे हर! होवैं स्वस्थ सब, यों कहि सब बन्दन करयो।
शिव तथास्तु कहि हँसि परे, दक्ष यज्ञ पूरन करयो॥

पद

शिव ! तुम भोले नाथ कहाओ।
सबतैं परे सबनि के स्वामी सब जग जीव जिवाओ ॥१॥ शिव०
पालन करो विविध वेपनितैं, पुनि संहार कराओ।
मकरी समजग मुखतैं उगिलो, फेरि निगलि सबजाओ ॥२॥ शि०
स्वरग नरक अपबरग देहु तुम, सुख दुख भोग भुगाओ।
मय बिधि सुख सत पुरुषनि देओ, दुष्टनि दंड दिवाओ ॥३॥ शि०
कृपा करो करुनाकर शङ्कर, शरनागत अपनाओ।
चूक करो प्रभु छिमा हमारी, भव भय भूत भगाओ ॥४॥ शिव०

ब्रह्मकृत शिवस्तुति

ब्रह्मोवाच

जाने त्वामीशं विश्वस्य जगतो योनिबीजयोः ।
शक्तेः शिवस्य च परं यत्तद्ब्रह्म निरन्तरम् ॥१॥
त्वमेव भगवन्नेतच्छिवशक्त्योः सरूपयोः ।
विश्वं सृजसि पास्यत्सिक्रीडन्नूर्णपटो यथा ॥२॥
त्वमेव धर्मार्थदुघाभिपत्तये,
दक्षेण सूत्रेण ससर्जिथाध्वरम् ।
त्वयैव लोकेऽवसिताश्च सेतवो,
यान् ब्राह्मणाःश्रद्दधते धृतव्रताः ॥३॥
त्वं कर्मणां मंगल मंगलानां,
कर्तुः स्म लोकं तनुषे स्वः परं वा ।
अमंगलानां च तमिस्रमुल्बणं,
विपर्ययः केन तदेव कस्यचित् ॥४॥
न वै सतां त्वच्चरणार्पितात्मनां,
भूतेषु सर्वेष्वभिपश्यतां तव ।
भूतानि चात्मन्यपृथग्दिदृक्षतां,
प्रायेण रोषोऽभिभवेद्यथा पशुम् ॥५॥
पृथग्धियः कर्मदृशो दुराशयाः,
परोदयेनार्पितहृद्रुजोऽनिशम् ।
परान् दुरुक्तैर्वितुदन्त्यरुन्तुदाः—
स्तान् मा वधीद्दैववधान् भवद्विधः ॥६॥

यस्मिन् यदा पुष्कर नाभमायया,
दुरन्तया स्पृष्टधियः पृथग्दृशः ।
कुर्वन्ति तत्र ह्यनुकम्पया कृपां,
न साधवो दैवबलात्कृते क्रमम् ॥७॥
भवांस्तु पुंसः परमस्य मायया,
दुरन्तयास्पृष्टमतिः समस्तदृक् ।
तया हतात्मस्वनुकर्मचेतः,
स्वनुग्रहं कर्तुमिहार्हसि प्रभो ॥८॥
कुर्वध्वरस्योद्धरणं हतस्यभोः,
त्वयासमाप्तस्य मनो प्रजापतेः ।
न यत्र भागं तव भागिनो ददुः,
कुयज्विनो येन मखो निनीयते ॥९॥
जीवताद्यजमानोऽयं प्रपद्ये ताक्षिणी भगः ।
भृगोःश्मश्रूणि रोहन्तु पूष्णोदन्ताश्च पूर्ववत् ॥१०॥
देवानांभग्नगात्राणामृत्विजां चायुधाश्मभिः ।
भवतानुगृहीतानामाशु मन्योऽस्त्वनातुरम् ॥११॥
एष ते रुद्र भागोऽस्तु यदुच्छिष्टोऽध्वरस्य वै ।
यज्ञस्ते रुद्रभागेन कल्पतामद्य यज्ञहन् ॥१२॥

ध्रुवजी द्वारा भगवान् की स्तुति (१)

(२६)

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्ताम्,
सञ्जीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्,
प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥१

(श्रीभा० ४ स्क० ९ अ० ६ श्लो०)

छप्पय

सौतेली माँ वाकबान लखि ध्रुव वन आये ।
लै नारद तै मन्त्र श्याम षट मास रिझाये ॥
भये प्रकट प्रभु विनय करन शिशु मन ललचायो ।
बानी बोध कराय गाल तैं शङ्ख छुवायो ॥
विनय करै—हरि ! हरन दुख, प्रभु प्रानिनि के प्रान हो ।
सकल करन जीवित करन, सुख सम्पति की खान हो ॥

महाराज उत्तानपाद के सुनीति और सुरुचि दो रानियाँ थीं। सुनीति के ही पुत्र ध्रुवजी थे और सुरुचि के उत्तम नाम का पुत्र था। सौतेली माँ ने ध्रुव का अपमान किया, इसलिये माता की

---

१ भगवान् की स्तुति करते हुए ध्रुवजी कह रहे हैं—"जो भगवान् सर्वशक्ति सम्पन्न हैं, जो आप मेरे अन्तःकरण में प्रविष्ट होकर मेरी सोयी हुई वाणी को जगाते हैं तथा आप ही मेरे कर, चरण, कर्ण, तथा त्वचा आदि अन्य समस्त इन्द्रियों को प्राणों को भी सजीव करते हैं, उन आप परम पुरुष प्रभु पादपद्मों में प्रणाम है।"

आज्ञा लेकर ध्रुवजी मधुवन में तपस्या करने चले गये, नारद जी ने मार्ग में उन्हें मन्त्र दिया, उपासना की विधि बतायी। ६ महीने की घोर तपस्या से भगवान् का सिंहासन हिल उठा। वे अपने धाम से दौड़कर ध्रुवजी को दर्शन देने मधुवन में आ पहुँचे। बालक ध्रुव ने जब अपने सम्मुख शङ्ख, चक्रधारी, कल्याणकारी, शरणागतविपति विहारी बनवारी को देखा, तो वे हक्के-बक्के से रह गये। बालक ही जो ठहरे, बुद्धि उतनी विकसित नहीं थी, शास्त्रों का अध्ययन भी नहीं किया था, पाँच वर्ष के बालक को ज्ञान ही कितना होता है, उनकी इच्छा भगवान् की स्तुति करने की हुई, किन्तु कभी स्तुति की हो तो जानें, वे विवश होकर छटपटाने लगे। सर्वान्तर्यामी प्रभु अपने बाल भक्त के भाव को समझ गये, उन्होंने अनन्त ज्ञान भंडार अपने पांचजन्य शङ्ख के अग्रभाग से उनके कपोल का स्पर्श करा दिया। फिर क्या था स्वयं साक्षात् ज्ञानदात्रृ सरस्वती उनके कण्ठ के ऊपर आकर बैठ गयीं और वे भगवान् के मुखारविन्द को निहारते हुए उनकी स्तुति करने लगे।

ध्रुवजी ने कहा—"प्रभो मैं आपके पुनीत पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ। हे मेरे नारायण! आप इस अज्ञ बालक की वन्दना को स्वीकार करें। स्वामिन्! अज्ञान के कारण तमोगुण की अधिकता से मेरी वाणी अगाढ़ निद्रा में प्रसुप्त पड़ी थी, उसमें इतनीशक्ति नहीं थी, किवह आपकी उठकर स्तुतिकर सके। आपकी विशद विरुदावली का बखान कर सके, किन्तु आप तो परम प्रकाशमय हो, अन्तर्यामी हो, ज्ञानमय तथा सम्पूर्ण सामर्थ्य सम्पन्न हो। आपने मेरे अन्तःकरण में प्रवेश करके अपने प्रभाव से अपने तेज से निर्जीव के सदृश प्रसुप्त पड़ी वाक्देवी को जाग्रत कर दिया, सजीवता प्रदान कर दी। अनशन करने के कारण कर, चरण, कर्ण, चक्षु, नासिका, रसना, त्वचा, पायु, और उपस्थ ये

सभी इन्द्रियाँ शिथिल पड़ गयी थीं, उन सबमें आपने अपने संकल्प से ही चैतन्य प्रदान कर दी। वाह्यकरण तथा अन्तःकरण में स्फूर्ति भर दी। ऐसे आप तेजोमय प्रकाशमय प्रभु के पादपद्मों में प्रणाम है, वारम्वार नमस्कार है। प्रभो! आप मेरे ही नहीं सभी के स्वामी हैं, इन्द्रियों को इद्रियत्व प्रदान वाले आप ही हो। प्राणों में प्रीणनशक्ति चैतन्य आप ही भरते हो। इन्द्रियों तथा प्राणों के ईश आप हो हैं। प्रसुप्त जीव जगत को जाग्रत करने की शक्ति आप में हो है। आप ही जीवों में जीवत्व स्थापित करते हो। ऐसे आपको वारम्वार नमस्कार है।

हे पुरुषोत्तम! इस सृष्टि रचना में आपको कुछ प्रयास नहीं करना पड़ता। कोई संगी साथी सहयोगी खोजना नहीं पड़ता। आप एक अकेले अद्वैत होकर भी अनेक हो जाते हो नाना रूप रखकर क्रीड़ा करते हो। अपनी अनन्त गुणमयी माया शक्ति से अपने संकल्प द्वारा ही महत्तत्व, अहंतत्व तथा इन्द्रियादि की रचना कर लेते हो। वास्तव में देखा जाय तो माया कृत यह दृश्य प्रपञ्च गुणों के इन्द्रियादि विकार जड़ हैं, असत् हैं, किन्तु आप उन सबमें जीव रूप से प्रविष्ट होकर उन्हीं के आकार जैसे भासने लगते हो, उन्हीं की आकृति जैसे प्रतीत होने लगते हो। जैसे छोटे मोटे, लम्बे चौड़े नाना आकृतियों के काष्ठ के टुकड़े पड़े हैं, उनमें अग्नि प्रवेश करती है, तो गोल काष्ठ में अग्नि गोल प्रतीत होती है, लम्बे काष्ठ में लम्बी और मोटे काष्ठ में मोटी। मोटापन, लम्बापन, चौड़ापन अग्नि मे नहीं है, काष्ठ के संसर्ग से उसमे ऐसी प्रतीत होने लगती है। निराकार अग्नि अपनी उपाधियों के अनुसार भिन्न-भिन्न आकृतियों में भासता है।

स्वामिन्! यही बात नहीं कि आप बद्ध जीवों के ही स्वामी हैं। आप नित्य, मुक्त, बद्ध तथा मुमुक्षु चारों प्रकार के जीवों के उपास्य हैं, सभी की शरण आप ही हैं। सर्ग के आदि में चतु-

मुख ब्रह्मा भी किंकर्तव्यविमूढ़ से बने हुए थे। उन्हें अपने कर्तव्य का प्रबोध भी नहीं था। वे सृष्टि रचना करनेमें सर्वथा अपनेको असमर्थ अनुभव करते थे। वे निर्णय ही न कर सके थे, कि अब मुझे क्या करना चाहिये, उस समय उन्हें आपकी ही कृपा से स्फुरणा हुई कि "जो मेरे जनक हैं, जिन्होंने मुझे उत्पन्न किया है, उन्हीं की शरण में मुझे जाना चाहिये।" यह सोचकर उन्होंने आपके चरणों की शरण गही। आपने कृपा करके उन्हें सृष्टि विषयक ज्ञान प्रदान किया, जिसके प्रभाव से प्रसुप्त पुरुष जैसे जागकर अपनी प्राचीन वस्तुओं को जाग्रत अवस्था में अवलोकन करता है, वैसे ही उन्होंने इस जगत् को देखा। उन्हें जगत् रचना की स्मृति हो उठी, सृष्टि की सामग्री का साक्षात्कार हुआ। ऐसे आप इस जगत् रूप वृक्ष के आदि बीज एक अद्वय के पाद-पद्मों में प्रणाम है।

प्रभो! संसारी जीव आपकी उपासना संसारी भोगों की कामना से करते हैं, हमें अन्न मिले, वस्त्र मिले, पति को पत्नी और पत्नी को सुघड़ पति मिले, रूप मिले, भोगों में सफलता मिले, हमारे शत्रुओं का नाश हो, तथा और भी सभी भोग की वस्तुएँ प्राप्त हों। हे करुणासिन्धो! ये भोग वस्तुएँ तो नरक में भी मिलती हैं। नारकीय जीव भी इन्द्रियजन्य विषयों को पाते हैं। सूकर कूकर काक आदि विष्ठा खाने वाली योनियों में भी मानव शरीर से भोगे जाने वाले विषय प्राप्त हो जाते हैं, बाल बच्चे तो उनके भी होते हैं। मृतक शरीर को भी वस्त्राभूषणों से अलंकृत करते हैं, उस पर भी पुष्प मालायें चढ़ाते हैं, अन्न का पिंड भी उसकी छाती पर रख देते हैं फिर मानव शरीर की विशेषता क्या रही? क्या विषय भोग भोगने को ही यह शरीर मिला है। हे दीनवन्धो! जिन भक्त पुरुषों का कोई नहीं रह जाता, जिनके अन्तःकरण में इच्छा नाम की

अवशेष नहीं रह जाती, वे भी आपके चरणों का चिन्तन करते हैं, ये भी आपकी कृपा के इच्छुक हैं, उनके भी आप ही एकमात्र आश्रय हैं फिर साधक शरीर पाकर मानवयोनि में आकर भी जो आपका चिन्तन नहीं करते, आपका भजन नहीं करते संसार के आवागमन से छुड़ाने वाले वांछा कल्पतरु रूप आपको नहीं भजते। जन्म मरण के बन्धन से छुटकारा न चाहकर विषय भोगप्राप्ति की कामना से आपकी उपासना करते हैं, वे अवश्य ही अभागे हैं। उनकी बुद्धि विपरीत बन गई है। दैव ने उन्हें दण्ड दिया है आपकी माया ने उनके साथ वंचना की है। वे माया द्वारा अवश्य ही ठगे गये हैं।

स्वामिन्! संसारी लोगों की बुद्धि कैसी विपरीत बन गयी है, लोग कुशल कर्मों में कितने प्रमत्त बन गये हैं कुत्सित कर्मों में कितने अनुरक्त हो गये हैं। सभी सुख की खोज में भटक रहे हैं, सुख प्राप्ति हेतु कठिन से कठिन कार्यों को कर रहे हैं, इन संसारी विषय भोगों में सुख की खोज कर रहे हैं। हे देव! शास्त्रकारों ने सबसे बड़ा सुख ब्रह्मानन्द को बताया है। अपने स्वरूप भूतब्रह्म में तल्लीन हो जाना ब्रह्मानन्द सुख में सदा सर्वदा तल्लीन हो जाना यही आनन्द की अवधि सीमा बतायी गयी है। किन्तु प्रभो! मैं तो कहता हूँ उस ब्रह्मानन्द सुख से बढ़कर सुख आप के चरण कमलों के ध्यान करने में है अथवा सत्सङ्ग में बैठकर आपकी तथा आपके भक्तों की कथा आपके अनन्य उपासकों के मुख से सुनी जाय, तो उस सुख के सम्मुख ब्रह्मानन्द सुख भी अति तुच्छ है। अहा! जिस समय बहुत बड़ा भक्त एकाग्र चित्त से एकान्त में अश्रुविमोचन करते हुए आपकी ही चर्चा में संलग्न हो, आपके ही गुणानुवाद गायन की उनमें होड़ लगी हो, आपके तथा आपके भक्तों का ही प्रसङ्ग छिड़ा हो, अमुक भक्त ने आपका ऐसे साक्षात्कार किया, अमुक भक्त पर आपने ऐसे अनुग्रह की

अमुक भक्त के दुःख को आप दयामय ने इस प्रकार दूर किया। अमुक भक्त के लिये आपको अमुक का वेप बनाना पड़ा। अमुक भक्त के लिये आप खम्भ से प्रकट हो गये। इस प्रकार के भक्तों के सत्सङ्ग में रस की जो धारा बहती है, उसमें स्नान अवगाहन करने से जो सुख मिलता है, वह ब्रह्मानन्द के सूनसान आश्वासन में कहाँ? वह भक्त सत्सङ्ग सुख तो अनुपम है, जब उसकी बराबरी स्वमहिमा वाला ब्रह्म सुख भी नहीं तो स्वर्गीय सुख तो अत्यन्त ही तुच्छातितुच्छ है। स्वर्गीय सुख तो संसारी सुख का ही राज संस्करण मात्र है। स्वर्ग में भी क्या होता है जब तक पुण्य सञ्चय है तब तक विमानों पर उड़ो अप्सराओं के साथ विहार करो। अपने सबसे बड़े सुखवालों से सदा ईर्ष्या करते रहो, उन्हें देखकर जलते रहो, पतन के दिन की चिन्ता करके मानसिक क्लेश उठाते रहो, जिस दिन पुण्य समाप्त हो जायगा कान पकड़कर वहाँ से निकाल दिये जाओगे, विमान छीन लिया जायगा, ऊपर से ढकेल दिये जाओगे जो अप्सरायें कंठ में बाहु डाले सङ्ग-सङ्ग घूमती रहती थीं वे बात भी न पूछेंगी, तुम्हें औंधे मुख गिरते देखकर ठठाका मार हँस जायँगी, तुम्हारे देखते-देखते ही दूसरे पुरुष के कंठ में हाथ डाल देंगी। ऐसे काल की करवाल से खण्डित किये जाने वाले स्वर्गीय भोगों में क्या सुख हो सकता है, उनमें कैसे आनन्द आ सकता है। हे प्रभो! हमें वही अपने भक्तों के सत्सङ्ग का सुख प्रदान कीजिये। हमें अपने चरणकमल के ध्यान का ही वरदान दीजिये आपके पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

हे अनन्त! हे दयामय! हे करुणासागर! मुझे धन नहीं चाहिये, भोग नहीं चाहिये, स्वर्ग तथा अपवर्ग भी नहीं चाहिये। मुझे तो आप अपने भक्तों का सत्सङ्ग प्रदान कीजिये। अहा! वे भक्त धन्य हैं, जो सदा भक्ति भाव में भरे रहते हैं,

जिनका अन्तःकरण सर्वथा निर्मल बन गया है, जिनके नयनों से निरन्तर नेह का नीर निकलता रहता है, ऐसे महत् भक्तों से मेरा समागम निरन्तर होता रहे, उनके सत्सङ्ग का सौभाग्य मुझे सदा ही मिलता रहे। मुझे भागवती कथामृत के पान करने का सुअवसर निरन्तर मिलता रहे। आपके गुणगणों के गान को मेरी जिह्वा सदा सर्वदा लालायित बनी रहे। मैं आपके लीलामृत को पीकर पागल बन जाऊँ, उन्मत्त हो जाऊँ, शरीर की सुधि बुधि खो जायँ आपका नाम श्रवण करते ही रोने लग जाऊँ। तब निश्चय ही मैं इस दुस्तार संसार सागर को पार कर जाऊँगा। नाना उग्र दुःख देने वाले नक्र मकर रूप कामनाओं से परिपूर्ण संसार सागर के परली पार पहुँच जाऊँगा। सुगमता के साथ सभी विपदाओं से रहित बन जाऊँगा। हे वरदानियों में श्रेष्ठ! ऐसा वरदान मुझे दे दीजिये। आपके चरण कमलों में बारम्बार नमस्कार है।

हे कमलनाभ! संसारी सम्बन्ध तो तभी तक प्रिय लगते हैं, जब तक आपके संसर्गी भक्तों का समागम नहीं होता, आपके चरणारविन्दों में जब तक अनुराग नहीं होता। आपके भक्त तो आपके कमल सरिस अरुण अमल विमल दिव्य गन्ध चरणों के चिन्तन में तन्मय बने रहते हैं, उनकी मधुरातिमधुर परम दिव्य सुगन्ध से उन भक्तों का चित्त सदा लुब्ध बना रहता है। ऐसे भक्त कभी भाग्यवश मिल जायँ, ऐसे भक्तों में किसी प्रकार मन फँस जाय, तो फिर सभी संसारी सुरति बिसर जाय। फिर उन्हें न घर याद आता है न द्वार न स्त्री की स्मृति दुख देती है, न पुत्र पुत्रियों को याद आती है, न सम्बन्धियों की सुधि रहती है, न कोई उनका शत्रु ही शेष रह जाता है। औरों की तो बात ही क्या उन्हें अपने-अपने इस अत्यन्त प्रिय शरीर का भी मोह नहीं रह जाता। शरीर की भी सम्पूर्ण सुधि-बुधि भूल जाते हैं। ऐसे भक्तों का हे अशरण शरण! मुझे समागम हो जाय।

उन्हीं का सत्सङ्ग मिल जाय। उन्हीं भक्तों में मेरा मन रम जाय, उन्हीं के सहवास में अनुराग बढ़ जाय। जिन भक्तों के आप ही एकमात्र सुहृद् हैं, प्रिय हैं, भजनीय हैं उन भक्तों के और उनके उपास्य आपके पादपद्मों मे पुनः पुनः प्रणाम है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! बालक होने के कारण ध्रुवजी आधी स्तुति करके कुछ रुक से गये। अब आधी स्तुति जैसे उन्होंने आगे की, उस कथा प्रसङ्ग को मैं इसके पश्चात् कह रहा हूँ। आप उसे एकाग्र चित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

अज कूँ दीयो ज्ञान शक्ति सोई तिनि जागी।
ऐसे प्रभु ढिँग विषय चहैं ते मनुज अभागी॥
जो सुख तव पदप्रेम सन्त सतसङ्गति माहीँ।
सो सुख जगके भोग स्वरग अपवरगहु नाहीँ॥
भ्रमत जगत महँ भाग्यवश, मिलै सन्त सङ्गति सतत।
तव सेवा गुनगान चित, चरननि महँ नित-नित निरत॥

पद

प्रभुजी! कथा सुधा नित प्याओ।
सोई शक्ति जगतरचना अज, ताकूँ फेरि जगाओ ॥१॥ प्रभु०
नित्यमुक्त अरु बद्ध मुमुक्षु, स्वामी सकल कहाओ।
जे जग भोग चहैं तजि तुमकूँ, तिनि जग माहिँ फँसाओ ॥२॥ प्र०
विषय, स्वरग, अपवरग न चाहूँ, पद पंकज लिपटाओ।
सन्त समागम कथा कीरतन, में मन मोर लगाओ ॥३॥ प्रभु०
बनि उन्मत्त सकल जग भूलूँ, पार प्रभो पहुँचाओ।
स्वामी सरवसु समुझूँ तुमकूँ, जग व्योहार भुलाओ ॥४॥ प्र०
तन, धन, स्वजन तुमहिँ सब मानूँ, संतनि में बैठाओ।
भोगे भोग बहुत भव भटक्यो, भगवन्! अब न भ्रमाओ ॥५॥ प्र०

ध्रुवजी द्वारा भगवान् की स्तुति (२)

(२७)

तिर्यङ् नग द्विजसरीसृप देवदैत्य-
मर्त्यादिभिः परिचितं सदसद्विशेषम्।
रूपं स्थविष्ठमज ते महदाद्यनेकम्
नातः परं परम वेद्मि न यत्र वादः॥१

(श्रीभा० ४ स्क० ९ अ० १३ श्लो०)

छप्पय

बारम्बार प्रनाम करूँ प्रभु, प्रेरक पालक।
जननि जनक जगदीशजगत भयहर खल घातक॥
सतचित आनँद रूप आदि अज अलख अगोचर।
परमेश्वर परतत्व परावर ईश चराचर॥
धेनु वत्सकूँ प्याइ पय, ममता अरु रक्षा करे।
कृपा करें करुनेश त्यों, प्रभु पद पदुमनि महँ परे॥

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवान की स्तुति करते हुए ध्रुवजी कह रहे हैं—"हे सर्वमय! हे चराचर में व्याप्त स्वामिन्! आप के साकार निराकार, स्थूल सूक्ष्म तथा पर अपर दो रूप बताये जाते हैं। यह स्थावर जंगमात्मक स्थूल जगत् भी आपका ही

---

१ भगवान् की स्तुति करते हुए ध्रुवजी कह रहे हैं—हे कभी जन्म न लेने वाले भगवन्! आपके पर और अपर दो रूप हैं। तिर्यक् योनि वाले पशु आदि जीव, पर्वत, पक्षी, सरपादिसरीसृप, देवता, दैत्य तथा

रूप है। चार पैर वाले पशु आदि पंखों से उड़ने वाले पक्षी आदि रेंगकर चलने वाले सर्पादिसरीसृप, पृथ्वी फोड़कर उत्पन्न होने वाले वृक्ष आदि दो पैरों से ऊपर सिर करके चलने वाले तथा हँसने वाले मनुष्यादि तथा पर्वतादि से परिपूर्ण और महत्तत्वादि कार्य कारणों से युक्त आपके में इस जगत् रूप स्थूल शरीर को ही जानता हूँ। जैसे दूध जमकर दही के रूपमें परिणत हो जाता है वैसे ही आप जगत् रूपमें बन गये हो। सम्मुख आपका यही रूप दृष्टिगोचर होता है, इसके अतिरिक्त आपका जो पर रूप है, उसके सम्बन्ध में मैं कुछ भी नहीं जानता वह तो अवाङ्‌ मनसगोचर है। वह तो वाणी का विषय ही नहीं, तब स्थूल बुद्धिवाला मैं उस रूप को जान ही कैसे सकता हूँ। हे स्वामिन्! आपके चरणकमलों का सदा सर्वदा चिंतन बना रहे यही आपके पुनीत पादपद्मों में पुनः पुनः प्रार्थना है। हे देवाधिदेव! हम आपको सिर से वन्दना करते हैं।

प्रभो! शास्त्रकारों से ऐसा सुना है कि आपकी नाभि ही एक ह्रद है, सरोवर है, सुन्दर दिव्यसिन्धु सदृश सर है। उसमें एक दिव्य कमल खिल जाता है, क्यों खिल जाता है, इसे तो आप ही जानों उस कमल से चतुर्मुख ब्रह्माजी उत्पन्न होते हैं, जो इस चराचर जगत् की रचना करते हैं। जिस कमल से उनकी उत्पत्ति होती है, वह परम तेजोमय, सुवर्ण वर्णवाला, दिव्य तथा अखिल भुवनों का एकमात्र

मनुष्यादि योनियों से परिपूर्ण तथा महत्वादि कार्य कारणों से युक्त यह जगत् ही आपका स्थूल ऊपर शरीर है, इसे तो मैं जानता हूँ किन्तु इसके अतिरिक्त जो आपका पर रूप है जिसमें वाद विवाद के लिये कोई स्थान ही नहीं उसे मैं नहीं जानता।

उत्पत्ति स्थान है उसी से तेजोमय अज अपने आप उत्पन्न हो जाते हैं, उन्हीं के द्वारा आपके संकल्प से यह सृष्टि उत्पन्न होती है। फिर विष्णु बनकर इस विश्व का पालन करते हैं, नाना अवतार धारण कर के अति मधुर श्रुतमधुर लीलायें करते हैं। जब कल्प का अन्त होता है, तो अपने पसारे को अपने आपही समेटकर उदरस्थकर लेते हैं। शेषजी को सखा समझकर उनकी सुखद शय्या बनाकर सुखपूर्वक शयन करते हैं। प्रलय से पयोनिधि में लेट लगाते हैं, तान दुपट्टा सो जाते हैं। हे स्वयं प्रकाश! हे परम पुरुष! आप परमेश्वर के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ।

हे आदि पुरुष! आप भूत, भविष्य, वर्तमान तथा कालातीत अवस्था में भी सदा अवस्थित रहने वाले नित्य हो। आप को कभी किसी काल में कैसा भी बन्धन नहीं, मोह ममता नहीं माया अविद्याका लेश नहीं अतः आप सदा सर्वदा मुक्त हैं। नित्य मुक्त ही आपका स्वरूप है। आप में किसी प्रकार का आमय नहीं इसी लिये आप निरामय हैं, आप में कभी किसी प्रकार की अपावनता नहीं अतः आप परम पावन कहाते हैं। अशुचिका अंशभी नहीं अतः आप नित्य शुद्ध हैं। स्थूलता जड़ता से आप परे हैं अतः विशुद्ध चैतन्य आनन्द घन हैं। आप सबके साक्षी, सबके प्रेरक और सबके आत्मा हो, आप में कैसा भी किसी काल में भी विकार नहीं निर्विकार स्वरूप हैं। आप से प्रथम कोई है ही नहीं। आप से पहिले शब्द की तो कल्पना ही नहीं हो सकती, क्योंकि काल तो आपके द्वारा निर्मित हुआ आप तो परम पुरातन सत्य सनातन आदि पुरुष हैं। आपको किसी प्रकार का अभाव नहीं। जिसे किसी वस्तु का अभाव होता है, वही चिन्ता करता है, उसे पाने का प्रयत्न करता है, आप तो सदा सर्वदा सब प्रकार से सन्तुष्ट हैं, षडैश्वर्य सम्पन्न हैं, त्रिलोकेश हैं। सप्तद्वीप नव खण्ड

चतुर्दशभुवनों में आपका ही आधिपत्य है। आप बुद्धि की समस्त अवस्थाओं को अखण्ड रूप से बिना किसी प्रकार के व्यवधानके देखने वाले हो। सृष्टि के लिये आप ब्रह्मरूप, संहार के लिये रुद्र रूप और संसार की स्थिति के लिये यज्ञपुरुष श्री विष्णुरूप से स्थित हो जाते हैं। हे स्वामिन्! यह जगत् आपकी क्रीड़ा स्थली है। हे कौतुकी क्रीड़ा प्रिय! हे नटनागर! आपको वारम्वार नमस्कार है।

हे अद्वय! आप द्वैत रहित अद्वय हो। एक हो, एक होते हुए भी अनन्त बन जाते हो। अनन्त रूप भी आपका ही है। आप आद्य हैं। आनन्द स्वरूप केवलानन्दमय हैं, निर्विकार हैं, निराकार हैं, निरजंन हैं, निर्लेप हैं, ब्रह्म स्वरूप हैं। आप प्रयत्न से पुरुषार्थ से, श्रमसे किसी को उत्पन्न नहीं करते, जैसे श्वास प्रश्वास स्वाभविक आती जाती है, वैसे ही विद्या अविद्या आदि विरुद्ध गतियों वाली अनेक शक्तियाँ स्वाभाविक रूप से सहज भाव से क्रमशः अहर्निश आपसे प्रगट होती रहती हैं। आप ही सब की उत्पत्ति के एकमात्र आलय हैं, स्थान हैं, कारण हैं। ऐसे ब्रह्म स्वरूप आप आदि पुरुष के चरणों की शरण मैंने ली है। आप मुझे अपनाइये, अपने चरणों का किंकर बनाइये। आपके चरणों में बारम्बार प्रणाम है।

प्रभो! संसारी वासना को लेकर आपका भजन किया जाय, तो वह भजन क्या हुआ। जान बूझकर अपने पैरों में सुदृढ़ बेड़ी पहिनने के समान प्रयत्न हुआ। मोक्ष स्वरूप आपको प्रसन्न करके इन्द्रियजन्य विषयभोगों की वांछा अत्यंत ही गहर्य है। संसारी भोगोंको प्राप्त करना यह तो पुरुषार्थ का फल नहीं हुआ पुरुषार्थ पुरुष तो आप ही हो, आपका जो अर्थ अर्थात् आपकी भक्ति आपका स्वरूप यही पुरुषार्थ का यथार्थरूप है।

पुरुषार्थ आपही हैं जो आपको ही पुरुषार्थ मानकर कोई भी संसारी कामना हृदय में न रखकर निष्काम भावसे निरंतर आपका भजन करते हैं, आपका ही चिन्तन करते हैं वे ही यथार्थ में पुरुषार्थी हैं, पुरुषार्थ का पूर्णफल वे ही पाते हैं।

आपके भजन ध्यान कीर्तन स्मरण का फल यह नहीं है कि देवता बनकर स्वर्गीय सुखोंको भोग सकें, सम्राट् बनकर सम्पूर्ण भूमंडल का शासन कर सकें, राजा बनकर सभी के द्वारा पूजित हो सकें। यह तो पुरुषार्थ का अतितुच्छ फल है। पुरुषार्थका यथार्थ फल तो यही है कि आपके चरणकमलों में भक्ति हो, आपके पादपद्मों की प्राप्ति हो। आपको प्रसन्न करके आपसे भक्त को राज्यादि तुच्छ वस्तुओं की कामना न करनी चाहिये।

हे भक्तवांछाकल्पतरो! आपका कोई भक्त निष्कामभाव से आपकी उपासना करता है और उसके मनमें कोई पुरानी छिपी हुई कामना शेष रह जाती तो आप उस सकाम भक्त की कामना को पूर्ण कर देते हैं। जैसे अल्पज्ञ वैद्य रोग के उपद्रवों की चिकित्सा करके रोगी को छोड़ देता है, वे उपद्रव किस रोग के कारण हुए थे, उस रोग की चिकित्सा नहीं करता। इसी प्रकार क्षुद्र देवता सकाम पुरुषों की कामनाओं को यदि उनका अनुष्ठान सविधि पूर्ण हुआ तो पूरी कर देते हैं। वह कामना उठी ही क्यों उस स्रोतको बन्द नहीं कर सकते। किन्तु आप तो देवाधिदेव हैं! सर्वान्तर्यामी हैं, घट-घटवासी हैं। आप जानते हैं, जीव जो इधर उधर प्रिय पदार्थों की प्राप्ति के लिये मन दौड़ाता है तो उसकी इच्छा मुझे पानेकी है भूलसे, अज्ञान-

वंश यह राज्य-पाट, धन-सम्पत्ति आदिमें सुख समझता है तो आप पहिले तो उनकी संसारी कामनाको पूर्ण करते हैं, जब उसे उन विषय सुखोंसे वैराग्य हो जाता है, तो आप उसे संसार सागरमें डूबने नहीं देते, अपने चरण कमलोंका आश्रय देकर पार पहुँचा देते हैं। यद्यपि वह मोक्ष माँगता नहीं, उतनी उसे बुद्धि ही नहीं। आपकी ओर दौड़ता तो है वह संसारी कामनाकी ही इच्छासे, आपसे चाहता तो है मेरी भाँति राज्यपाट तथा उच्चासन, किन्तु जैसे माता बच्चेके माँगने पर उसे मिठाई भी देती है और अपनी ओर से उसका मुख भी चूम लेती है। बच्चेके माँगने पर केवल मिठाई ही नहीं देती प्यार और मिठाई दोनों ही वस्तु देती है। जंगली गौका बच्चा अबोध होनेके कारण अपनी माँ से दूध ही चाहता है, दूधकी इच्छासे ही वह उसकी छातीमें अपना मुँह लगाता है, माता उसे भी दूध देती है, प्यार भी देती है और सिंह व्याघ्रादिकों से रक्षा भी करती है। हे प्रभो! आप हमारे जनक भी हो और स्नेहदात्री जननी भी हो। आप अपने आश्रितों पर अनुग्रह करने के लिये व्यग्र बने रहते हैं, आप अपने अनन्य भक्तों पर कृपा करनेको लालायित रहते हैं। प्रभो! हम भूलवश, अज्ञानके कारण आप से केवल संसारी भोगों की ही याचना करें तो आप हमें उतना ही देकर भुलावे में न डालें। हमारी काम, क्रोध, लोभ मोहादि शत्रुओंसे रक्षा भी करें और अपने चरणारविन्दों का प्यार भी प्रदान करें, हमें संसार रूप गहनगर्त में गिरने से बचावें।

स्वामिन्! हम सद्यः जातशिशु के सदृश अज्ञ हैं अबोध हैं। हमें अपने कर्तव्य का ज्ञान नहीं। मातृरूप आपके प्रति हमारा क्या कर्तव्य है इसे हम नहीं जानते। आप की गोदी को हम अपवित्र कर देते हैं नाना भाँति के अपराध अपचार करते हैं, हे

क्षमासागर ! हमारे अपराधों को क्षमा करके हमें अपना लें, आप अपने चरणकमलों में आश्रय दें, पादपद्मों में भक्ति दें, चिन्तन करने की शक्ति दें, अनन्य अनुरक्ति दें, संसारी विषय भोगों से विरक्ति दें। हे कृपासिन्धो ! कृपा कीजिये, हे आर्तबन्धो ! मुझ आर्त की पुकार सुनिये। आपको बारम्बार नमस्कार है, आपके पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! ध्रुवजी की विनती सुनकर भक्तवत्सल भगवान् ने उनकी इच्छा पूर्ति की। इस लोक में छत्तीस सहस्र वर्ष राज्य भोगने का तथा अन्त में सर्व लोक नमस्कृत ध्रुव लोक प्राप्ति का वरदान देकर अन्तर्हित हो गये भगवान् के अन्तर्हित हो जाने पर उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने सोचा—ओ हो ! मुझसे तो बड़ी भारी भूल हो गई। भगवान् को प्रसन्न करके भी उनसे राज्य पादादि की ही याचना की। जिन भगवान् को बड़े बड़े तपस्वी सहस्रों जन्मों में भी साक्षात्कार नहीं कर सकते हैं। उन्हें मैंने केवल ६ ही महीने में प्रत्यक्ष पा लिया, किन्तु उन मोक्षपति से मैंने माँगी धान की भूसी। मुझ मन्दभागी की मूर्खता तो देखिये अविनाशी की शरण में पहुँचकर भी नाशवान भोगों की ही याचना की। गंगा जीके निकट पहुँचकर भी उनसे चुल्लू भर खारे जलको ही माँगा। सुमेरु के समीप पहुँचकर भी उससे एक मुट्ठी धूलि ही चाही। हाय ! मेरी कैसी मति मारी गई। प्रतीत होता है, देवताओं ने मेरी बुद्धि को विपरीत बना दिया।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार ध्रुवजी पश्चात्ताप करके घर गये, पृथ्वीपर राज्य भोगकर अन्तमें, उन्हें ध्रुवलोक की प्राप्ति हुई। यह मैंने अत्यन्त संक्षेप में ध्रुवजीकी स्तुति सुनायी। अब आप पृथ्वी देवी ने जैसे भगवान् के अंशावतार पृथुकी स्तुति की है, उस प्रकरण को श्रवण करने की कृपा कीजिये।

छप्पय

रोगी सुतहिं अपथ्य मातु माँगे नहिँ देवै ।
त्यों तुम देउ न भोग सकामहु सेवक सेवै ॥
सब पुरुषारथ रूप प्रभो ! पद पंकज तुमरे ।
होवें जीवन मूरि परमधन सरबसु हमरे ॥
अति कोमल अति गंधयुत, जे शरनागत दुख हरें ।
तिनि प्रभु पद पंकजनि महँ, बार बार बन्दन करें ॥

(पद)

प्रभो ! पद पंकज प्रेम न होवै ।
अति मलीन माधव मन मेरो, नित विषयनि हित रोवै ॥१॥ प्र०
पाइ मनुज तनु परम सुअवसर, भोगनि महँ खल खोवै ।
मृगनयनी मुख लखि सुख पावै, तव चरननि नहिँ जोवै ॥२॥ प्र०
कीच वासना चितमहँ लिपटी, नेह नीर नहिँ धोवै ।
भयो प्रभात ज्ञान रवि विकस्यो, शठ शैया परि सोवै ॥३॥ प्र०
भटक्यो बहुत विपति अति पाई, तम महँ पंथ टटोवै ।
कृपा करो प्रभु मम मन मूरख, सुख संजोग संजोवै ॥४॥ प्र०

ध्रुवजीकृत-भगवत् स्तुति

ध्रुव उवाच

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां,
संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्,
प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥१॥

एकस्त्वमेव भगवन्निदमात्मशक्त्या,
मायाख्ययोरुगुणया महदाद्यशेषम् ।
सृष्ट्वानुविश्य पुरुषस्तदसद्गुणेषु,
नानेव दारुषु विभावसुवद्विभासि ॥२॥

त्वद्दत्तया वयुनयेदमचष्ट विश्वं,
सुप्तप्रबुद्ध इव नाथ भवत्प्रपन्नः ।
तस्यापवर्ग्यशरणं तव पादमूलं,
विस्मर्यते कृतविदा कथमार्तबन्धो ॥३॥

नूनं विमुष्टमतयस्तव मायया ते,
ये त्वां भवाप्ययविमोक्षणमन्यहेतोः ।
अर्चन्ति कल्पकतरुं कुणपोपभोग्यम्,

इच्छन्ति यत्स्पर्शजं निरयेऽपि नृणाम् ॥४॥
या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्म,
ध्यानाद्भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात् ।
सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ मा भूत्,
किंत्वन्तकासिलुलितात्पततां विमानात् ॥५॥
भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसंगो,
भूयादनन्त महताममलाशयानाम् ।
यनाञ्जसोल्वणमुरुव्यसनं भवाब्धिं,
नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः ॥६॥
ते न स्मरन्त्यतितरां प्रियमीश मर्त्यं,
ये चान्वदः सुतसुहृद्गृहवित्तदाराः ।
ये त्वब्जनाभ भवदीयपदारविन्द,
सौगन्ध्यलुब्धहृदयेषु कृतप्रसंगाः ॥७॥
तिर्यङ् नगद्विजसरीसृपदेवदैत्य,
मर्त्यादिभिः परिचितं सदसद्विशेषम् ।
रूपं स्थविष्ठमज ते महदाद्यनेकं,
नातः परं परम वेद्मि न यत्र वादः ॥८॥
कल्पान्त एतदखिलं जठरेण गृह्णन्,
शेते पुमान् स्वहगनन्तसखस्तदंके ।
यन्नाभिसिन्धुरुहकांचनलोकपद्म,
गर्भे द्युमान् भगवते प्रणतोस्मि तस्मै ॥९॥

त्वं नित्यमुक्तपरिशुद्धविबुद्ध आत्मा,
कूटस्थ आदिपुरुषो भगवांस्त्र्यधीशः।
यद्बुद्ध्यवस्थितिमखण्डितया स्वदृष्ट्या,
द्रष्टा स्थितावधिमखो व्यतिरिक्त आस्से ॥१०॥
यस्मिन् विरुद्धगतयो ह्यनिशं पतन्ति,
विद्यादयो विविधशक्तय आनुपूर्व्यात्।
तद्ब्रह्म विश्वभवमेकमनन्तमाद्यम्,
आनन्दमात्रमविकारमहं प्रपद्ये ॥११॥
सत्याऽऽशिषो हि भगवंस्तव पादपद्मम्,
आशीस्तथानुभजतः पुरुषार्थमूर्तेः।
अप्येवमार्य भगवन् परिपाति दीनान्,
वाश्रेव वत्सकमनुग्रहकातरोऽस्मान् ॥१२॥

धरा द्वारा पृथु-प्रभु की स्तुति

(२८)

नमः परस्मै पुरुषाय मायया,
विन्यस्तनानातनवेऽगुणात्मने ।
नमः स्वरूपानुभवेन निर्धुत-
द्रव्यक्रियाकारक विभ्रमोर्मये ॥❀
(श्रीभा० ४ स्क० १७ अ० २९ श्लो०)

छप्पय

अघ कारन सब बीज धरा निज उदर छिपाये ।
करन प्रजा दुख दूरि अवनि पै पृथु प्रभु आये ॥
धरि धनु शर कर धराधरन धरमाकर धाये ।
यह बिनीति धनि विवश विनययुत वचन सुनाये ॥
परम पुरुष निरगुन सगुन, सरग प्रलय पालन करन ।
पालक यदि घातक बनें, जाइ प्रजा पुनि किनि शरन ॥

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! वेन के प्रजा के प्रति असह्य अत्याचार देखकर धर्म प्राण ऋषियों ने मिलकर उस दुष्ट नास्तिक

❀ पृथिवी देवी पृथु महाराज की स्तुति करती हुई कह रही हैं—मैं उन निर्गुण स्वरूप परम पुरुष को बारम्बार नमस्कार करती हूँ। जो अपनी माया द्वारा नाना देहों को धारण करते हैं, तथा अपने स्वरूपानुभवों से द्रव्य, क्रिया और कारक रूप तरङ्गों और भँवरों को शान्त करते हैं।

धर्म विरोधी नरपति को अपनी हुंकार से मार डाला विना प्रजामें अराजकता फैल जाती है, और राजा भी कुलीन हो वंश-परम्परा से चोभ संस्कार वाला होना चाहिये इसीलिये ऋषियों ने उसके मृतक शरीर का मन्थन किया। मन्थन से प्रथम सम्पूर्ण शरीर का पाप एकत्रित होकर निषाद रूपमें निकला तदनन्तर पृथुरूप में भगवान् का अवतार हुआ। अत्यन्त पाप के कारण पृथ्वी ने सम्पूर्ण बीज अपने उदर में छिपा लिये थे धर्मात्मा भगवान पृथु ने ऐसी चोरी करने वाली पृथ्वी को मारने करने का सङ्कल्प किया। पृथ्वी गौका रूप रखकर भागी धनुषबाण लेकर महाराज पृथु भी उसके पीछे-पीछे चले। पृथ्वी ने जब देखा कि काल के समान अत्यन्त क्रोधमयी मूर्ति बनाये महाराज पृथु मुझे मारने के निमित्त मेरा पीछा कर रहे हैं, तो वह खड़ी हो गयी, उसने धर्मावतार पृथु को प्रणाम किया और हाथ जोड़कर स्तुति करने लगी।

स्तुति करती हुई भूदेवी कह रही है—"प्रभो! आप ही सबके जनक हो, पालक हो। इस चराचर विश्व को बात की बात में आप बना देते हो। पुनः इसका पालन भी आप नाना रूप रखकर विविध भाँति के वेष बनाकर अगणित अवतार लेकर सब प्रकार से करते हो। संसार एक सागर है इसमें पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये जो पञ्चभूत द्रव्य हैं ये ही इस अगाध भवनिधि की ऊँची-ऊँची तरंगें हैं। दशों वाह्य इन्द्रियाँ चार भीतर की इन्द्रियाँ तथा इन सबके अधिष्ठातृदेव ये सब भँवर हैं। इस प्रकार यह बहता हुआ जल प्रवाह है। जन्ममरण रूप से निरन्तर यह संसार प्रवाह प्रवाहित हो रहा है। इस द्रव्य क्रिया कारक रूप प्रवाह को एकमात्र आप ही शान्त करने में सर्वथा समर्थ हो। हे सर्वाधार! हे सर्व

नियन्ता सर्वेश्वर! हे सर्व साक्षी, परम पुरुष नित्य निर्गुणस्वरूप प्रभो! मैं आपके चरणों में वारम्वार नमस्कार करती हूँ।

हे नाथ! प्रजा पर जब कोई विपदा पड़ती है, तो राजा की शरण जाती है। सन्तानों पर कोई आपत्ति आती है तो वे माता पिता की शरण जाते हैं, सेवकों पर कोई कष्ट पड़ता है, तो वे स्वामी का आश्रय लेते हैं। जब पिता ही पुत्री पर प्रहार करे प्रजापालक ही प्रजाओं के प्रति घातक का काम करने लगे, स्वामी ही सेवक को मारने को उद्यत हो जाय, रक्षक ही भक्षक बन जाय,तो ये सब फिर अन्य किसकी शरण जायँ? हे अशरण शरण! हे एक मात्र रक्षक! मुझे बनाया किसने? आपने ही तो मुझे सम्पूर्ण स्थावर जंगम जीवों के रहने के लिए रचा है, आप ने ही तो मेरी सृष्टि की है और अब इस सम्पूर्ण सर्ग की सृष्टि की है और अब आप ही मुझे मारने को धनुष पर बाण चढ़ाये मेरा पीछा कर रहे हो ऐसी दशा में मैं किसको शरण में जाऊँ, दूसरा कोई रक्षक दिखाई भी तो नहीं देता। आप सर्वत्र स्वतंत्र हैं, स्वाधीन हैं, सब कुछ करने में समर्थ हैं, किन्तु मैं एक बात पूछती हूँ धर्म की मर्यादा किसने स्थापित की है? यह कर्तव्य है यह अकर्तव्य है, इसका विधान भी तो आपने ही बनाया है। आपने पुत्री को और गौ को दोनों को अवध्या बताया है, मैं आप की पुत्री भी हूँ, फिर आप मुझे कैसे मारेंगे? मेरे ऊपर तीखे तीखे बाण कैसे छोड़ेंगे?

स्वामिन्! आदि कल्प में इस चराचर जगत की रचना आप ने ही तो की थी, आपने ही तो अपनी अचिन्त्य माया के प्रभाव से समस्त दृश्य प्रपंच का निर्माण किया था, आज भी तो आपने अपनी माया द्वारा ही यह रूप रखकर अवतार लिया है। मेरे ऊपर रहने वाले सभी प्राणियों की रक्षा के ही निमित्त तो आप

अवतरित हुए हैं। मुझे मारकर प्रजा की कैसे रक्षा करेंगे। सबको कहाँ पर बसावेंगे? कहाँ सबको आश्रय देंगे? पुत्रों पर कैसे शस्त्र चलावेंगे, गौ का घात कैसे करेंगे?

भगवन्! मैं जानती हूँ, आपका यह बनावटी क्रोध संहार के लिये नहीं है, पालन के ही निमित्त है, आप प्रजाको बुभुक्षित देख कर दुखी हो गये हैं, आप विशुद्ध सत्वमूर्ति को क्रोध कहाँ! आप तो नाटक रच रहे हैं। क्रीड़ा कर रहे हैं। आप तो एक हैं, केवल हैं अद्वय हैं। एक होकर भी आप अनेक रूप रख लेते हैं। संसार में जो ब्रह्मादिदेव ईश्वर कहे जाते हैं, उन सब ईश्वरों के भी आप ही एकमात्र ईश्वर हैं। आपकी चेष्टाओं को कौन समझ सकता है? आपकी लीलाओं का कौन पार पा सकता है। जिनके जीवन में साधन नहीं संयम नहीं, इन्द्रियों के वेग को शान्त करने की सामर्थ्य नहीं, ऐसे असंयमी तथा अशान्त, पुरुष आपकी भूत भविष्य वर्तमान की, की हुई, तथा करायी हुई, चेष्टाओं को कैसे समझ सकते हैं? कैसे जान सकते हैं?

हे विरुद्धधर्माश्रय प्रभो! प्रजनन शक्ति भी आप ही में है तथा संहार शक्ति ने भी आप का ही आश्रय लिया है। आप ही महत्तत्व, अहंतत्व, इन्द्रियों, इन्द्रियों के अधिष्ठातृदेवों, तथा पंच भूतों की शक्तियों द्वारा सम्पूर्ण जगत को उत्पन्न करते हो और फिर रुद्र रूप रखकर इन सबका संहार भी कर डालते हो। हे परस्पर में विरुद्ध शक्तिवाले प्रभो! आपके पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

प्रभो! आप कहते तो हो कि तुझे मार डालूँगा। किन्तु मुझे विश्वास नहीं होता कि आप ऐसा कर सकेंगे। यदि आपको ऐसा करना ही होता आप वाराह रूप रख कर मुझे रसातल से निकाल कर क्यों लाते? शूकर रूप रखकर मेरा उद्धार क्यों करते? आप तो पंचभूत, समयेन्द्रिय रूप

स्वनिर्मित जगत् की रक्षा के लिये जल के भीतर से बाहर लाये थे। मुझे तो आपने सबको धारण करने का कार्य सौंपा है। जैसे जल के ऊपर नौका इसीलिये रखी जाती है, कि जिसपर चढ़कर लोग पार हो सकें। मैं जल के ऊपर नौका रूप में ही अवस्थित हूँ, मेरे ही ऊपर समस्त प्राणी बैठे हुए हैं। शूकर रूप से आप लाये और पृथु रूप रखकर मुझपर क्रोधकर रहे हैं कोप का अभिनय रच रहे हैं। मेरा अपराध तो बताइये, अपने क्रोध का कारण तो समझाइये। मेरा अपराध यही है, कि मैं आपको अन्न नहीं देती। गौ रूप में चारा तो चुगती हूँ, किन्तु दूध देते समय लात मार देती हूँ, दुहने नहीं देती। सो, प्रभो! दुहने वाला कोई निपुण होना चाहिये। मृदुलमुट्ठी वाला ही सरलता से दुह सकता है। पापाचरण के कारण, नास्तिकता बढ़ जाने के कारण, अकर्म वृद्धि होने से ही मैंने अपने भीतर बीजों को छुपा लिया है। ये पापी मेरा दूध पी पीकर और बली होंगे, और अधिक अन्याय अत्याचार करेंगे। आप जगत् पिता के पिता कहलाने वाले वैन ने ही यह गोलमाल की है, उन्हीं के कारण नास्तिकता का प्रसार हुआ है, अधर्म का प्रचार और धर्म का संहार हुआ है। आप धर्म के साक्षात् स्वरूप तो अब अवतरित हुए हैं। अब आप धर्म की स्थापना करें प्रजा को अभय करें और उत्तम बछड़ा बनकर इच्छानुसार जैसा चाहें वैसा दूध दुह लें।

हे सबसे श्रेष्ठ! हे पुरुषोत्तम! आप मायापति हैं। आपकी मोहिनीमाया के प्रभाव से प्राणी मूढ़ बन गये हैं, वे आपकी महिमा जान नहीं सकते। आपकी अचिन्त्य लीला का रहस्य समझ नहीं सकते। आप ईश्वर हैं हम जैसे माया मोहित जीव आपकी चेष्टाओं को समझ नहीं सकते। यह रूप आपने वीरता के प्रदर्शन हेतु बनाया है। आपने शौर्य वीर्य से जगत् में

यश का विस्तार करने के निमित्त ही आप अवनिपर अब अवतरित हुए हैं। हे तेजस्वी यशस्वी देव! आपके पादपद्मों में बारम्बार नमस्कार है, आपके चरणकमलों में प्रेम पूर्वक प्रणाम है।

सूतजी कहते हैं—मुनियों! इस प्रकार पृथ्वी की प्रार्थना पर परमात्मारूप पृथु प्रसन्न हुए उन्होंने भिन्न-भिन्न बछड़े बनाकर पृथ्वी का दोहन किया। फिर सौ अश्वमेधयज्ञों की दीक्षा ली। अन्तिम यज्ञ में इन्द्र ने विघ्न किया। महाराज पृथु उसे भस्म करना चाहते थे, उसी समय चतुर्भुज विष्णु प्रकट हुए। विष्णु भगवान की राजारूप में पृथुजी ने जैसे स्तुति की उस स्तुति को मैं आगे कहता हूँ।

छप्पय

सूकर बनि के मोइ रसातल तैं प्रभु लाये।
मेरे ऊपर जीव चराचर सकल बसाये॥
दुहिता नारी धेनु इनहिँ बुधि नहिँ संहारैं।
देव! दयो नहिँ दूध मोइ ताहीतैं मारैं॥
धरा विनय सुनि धीर प्रभु, भये मुदित आदर कियो।
बछरा विविध बनाइकैं, अन्नरूप पय दुहि लियो॥

(पद)

प्रभो! पृथु! जीवनि विपदा टारी।
जब जब भूको भार बढ़्यो तब प्रकट भयो अवतारी॥१॥ प्र०
असुर रसातल मोइ छिपायो, सूकर बने मुरारी।
रिपुकूँ मारि धरि दाँतनि पै, बाहर देव निकारी॥२॥ प्रभो०
अब धरि धनु मारनहित धाये, हौं तो सुता तिहारी।
धरा धेनु पुनि सुता शरन प्रद, रक्षा करो हमारी॥३॥ प्रभो०
पद पङ्कज में पुनि-पुनि प्रनमों, प्रनतपाल प्रनकारी।
बेटी बनी विनय बच बोलूँ, बार-बार बलिहारी॥४॥ प्रभो०

धरा कृत पृथु स्तुति

धरोवाच

नमः परस्मै पुरुषाय मायया,
विन्यस्तनानातनवे गुणात्मने ।
नमः स्वरूपानुभवेन निर्धुत,
द्रव्यक्रियाकारकविभ्रमोर्मये ॥२॥
येनाहयात्मायतनं विनिर्मिता,
धात्रा यतोऽयं गुणसर्गसङ्ग्रहः ।
स एव मां हन्तुमुदायुधः स्वराड्,
उपस्थितोऽन्यं शरणं कमाश्रये ॥२॥
य एतदादावसृजच्चराचरं,
स्वमाययाऽत्माश्रययावितर्क्यया ।
तयैव सोऽयं किल गोप्तुमुद्यतः,
कथं नु मां धर्मपरो जिघांसति ॥३॥
नूनं वतेशस्य समीहितं जनैः,
तन्मायया दुर्जययाकृतात्मभिः ।
न लक्ष्यते यस्त्वकरोदकारयद्,
अनेक एकः परतश्च ईश्वरः ॥४॥
सर्गादि योऽस्यानुरुणद्धि शक्तिभिः,

द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मभिः ।
तस्मै समुन्नद्धनिरुद्धशक्तये,
नमः परस्मै पुरुषाय वेधसे ॥५॥
सवै भवानात्मविनिर्मितं जगत् ,
भूतेन्द्रियान्तःकरणात्मकं विभो ।
संस्थापयिष्यन्नज मां रसातलाद्,
अभ्युज्जहाराम्भस आदिसूकरः ॥६॥
अपामुपस्थे मयि नाव्यवस्थिताः,
प्रजा भवानद्य रिरक्षिषुः किल ।
स वीरमूर्तिः समभूद्धराधरो,
यो मां पयस्युग्रशरो जिघांससि ॥७॥
नूनं जनैरीहितमीश्वराणाम् ,
अस्मद्विधैस्तद्गुणसर्गमायया ।
न ज्ञायते मोहितचित्तवर्त्मभिः,
तेभ्यो नमो वीरयशस्करेभ्यः ॥८॥

महाराज पृथु द्वारा विष्णु भगवान् की स्तुति

(२६)

वरान् विभो त्वद्वरदेश्वराद् बुधः,
कथं वृणीते गुण विक्रियात्मनाम् ।
ये नारकाणामपि सन्ति देहिनाम् ,
तानीश कैवल्यपते वृणे न च ॥*

(श्री भा० ४ स्क० २० अ० २३ श्लो०)

छप्पय

पृथिवी-पति पृथु सत्र माहिँ प्रकटे परमेश्वर ।
वर हरि माँगन कह्यो विनययुत बोले नृपवर ॥
नाथ ! न चाहूँ विषय-भोग तव गुन नित गाऊँ ।
पीवें तव रस-कथा सहसदश कानिनि चाहूँ ॥
सुयश सुधारस पान करि, मत्त बने तव भक्तगन ।
तिनि मुख निसृत कथा मृत, पान करत नहिँ मरहि मन ॥

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! महाराज पृथु ने सौ अश्व-मेघ यज्ञ करने की दीक्षा ली । ९९ यज्ञ तो सकुशल पूरे हो गये ।

---

* भगवान् विष्णु से वर माँगते हुए महाराज पृथु कह रहे हैं—"हे प्रभो ! आप जितने भी वर देनेवाले हैं, उन सबमें श्रेष्ठ वरदाता हैं, हे मोक्षपति ! आपको प्रसन्न करके गुण विक्रय रूप देह में अभिमान करने

अब तो इन्द्र को बड़ी चिन्ता हुई कि कहीं ये सौ यज्ञ करके शतक्रतु न बन जायँ, मेरे इन्द्रासन को न ले लें, इसलिये वह यज्ञ में बारम्बार विघ्न करने लगा। तब महाराज पृथु को बड़ा रोष आया उन्होंने ब्राह्मणों को आज्ञा दी, इस इन्द्र को मंत्रों द्वारा बुलाकर यज्ञ में भस्म कर दो। ब्राह्मण ऐसा करने लगे तभी ब्रह्माजी ने तुरन्त प्रकट होकर महाराज पृथु को तथा ऋत्विज ब्राह्मणों को ऐसा करने से रोक दिया। पितामह की आज्ञा मानकर महाराज ने ऐसा विचार छोड़ दिया। तब भगवान् विष्णु ने स्वयं प्रकट होकर महाराज पृथु को दर्शन दिये और अद्वितीय उपदेश दिया। भगवान् विष्णु के दर्शन, उपदेश श्रवण से महाराजा गद्‌गद् हो गये तब भगवान् ने कोई उत्तम वर माँगने के लिये उनसे कहा। इस पर अत्यन्त ही अधीर होकर भगवान् के अंशावतार महाराज पृथु अत्यन्त ही विनम्रभाव से स्तुति करते हुए कहने लगे।"

महाराज पृथु कह रहे हैं—"हे प्रभो! समस्त देवता अपने आराधकों को पूजित होने पर वर देते हैं। यज्ञों में देवताओं की पूजा होती है, भक्त की कामना के अनुसार देवता 'वरंब्रूहि' कहते हैं। सभी देवता अपनी सामर्थ्य की परिधि में ही वर दे सकते हैं। देवताओं के राजा इन्द्र की परिधि अन्य देवगणों से बड़ी है। इन्द्र से भी श्रेष्ठ वरदाता चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा बताये जाते हैं। उन लोक पितामह ब्रह्मा को प्रसन्न करके बड़े बड़े सुर और असुरों ने दुर्लभ वर प्राप्त किये हैं, किन्तु हे

वालों के भोगने योग्य भोगों को जो नरक में रहने वालों को भी प्राप्त हो जाते हैं कौन बुद्धिमान पुरुष माँगेगा? अतः हे परमेश्वर! मैं आपसे संसारी भोगों की याचना नहीं करता।"

गरिष्ठ! आप तो ब्रह्मादि सभी देवताओं के प्रभु हैं, स्वामी हैं, अधिपति हैं। अतः सभी से श्रेष्ठ, उत्तम से भी उत्तम देव दुर्लभ वर देने में सर्वथा समर्थ हो। इतने महान् होकर भी आप मुझसे वर माँगने को कह रहे हैं, तो मुझसे बड़ा भाग्यशाली और कौन हो सकता है। स्वामिन्! मैं अपने भाग्य की सराहना करता हूँ, किन्तु मैं इस चिन्ता में पड़ा हूँ, कि आप इतने बड़े वरदानी से कौन-सा वर माँगूँ?

आप कहेंगे—"कि धन माँगो, यश माँगो, सुन्दर स्वरूप माँगो, अनेकों रूपवती गुणवती मनोनुकूल, आज्ञानुसार बर्ताव करने वाली पत्नियों को माँगो, सहस्रशः सुतों की याचना करो, शत्रुओं पर विजय माँग लो, असन, वसन, वाहन, नगर पुर, पत्तन, त्रैलोक्य का राज्य, स्वर्गीय सुख तथा और भी संसार में सबसे श्रेष्ठ सुख जो हो उसे माँग लो।" तो प्रभो! मैं कहता हूँ, इन सभी सुखों का सम्बन्ध शरीर से ही तो है। यह शरीर क्या है सत्व, रज और तम इन गुणों का विकार ही मात्र है। मिट्टी का घर मिट्टी से ही लीपा जाता है, चूने का भवन चूने से ही पोता जाता है, इसी प्रकार त्रिगुणात्मक शरीर के विषय भोग भी त्रिगुणात्मक ही होंगे। छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी सभी योनियों में सभी को न्यूनाधिक विषय प्राप्त हैं। आहार निद्रा भय मैथुन आदि सूकर कूकर, पशु पक्षी सभी को प्राप्त हैं। ये सुख तो नारकीय जीवों को भी मिल जाते हैं। जो भी शरीरधारियों को कर्मानुसार स्वतः ही प्राप्त हो सकते हैं, उनको आप इतने महान् वरदाता से माँगने में मुझे लज्जा लगती है, सङ्कोच होता है, उन तुच्छ विषय सुखों की याचना आप से करना मानों आपका अपमान करना है। अतः मैं विषय भोगों को तो आप से माँगूगा नहीं। आप तो उस मोक्ष तक को देने में समर्थ हैं, जिसे दूसरा कोई देव दे ही नहीं सकता। अतः हे मोक्षाधिपते!

हे प्रभो ! हे परमेश्वर ! मैं चक्कर में पड़ गया हूँ, कि आप से माँगू भी तो क्या माँगू, किस वर की आप से याचना करूँ !

आप कहेंगे-कि जब तू जानता है, मैं अपवर्ग पति हूँ मोक्ष दाता हूँ, सब से श्रेष्ठ गति कैवल्यपद को देने में समर्थ हूँ, तो उसी को क्यों नहीं माँग लेता। मैं तो आज सभी इसे देने को कटिबद्ध हूँ।

सो, प्रभो ! आपकी उदारता में तो कुछ सन्देह ही नहीं, मोक्ष देने में आपको तो कोई सङ्कोच ही नहीं, किन्तु मुझे गुम्म-सुम्म मुक्ति चाहिये ही नहीं। चीटीं को शक्कर का चखने को न मिले उसे शक्कर ही बना दिया जाय, तो क्या आनन्द मिलेगा। मुझे तो सबसे श्रेष्ठ स्थिति वह लगती है कि आपकी भक्ति में विभोर बने, आपके रूपासव में छके अपने प्रेम मे पगे हृदय वाले, शुद्ध निष्कपट संसारी भोगों से विरक्त बहुत से भक्त एक साथ बैठे हों। उनके हृदय रूपी में आपके युगलचरण रूप दो अम्लान कमल सदा विक-सने रहते हों और उन युगल अरविन्दोंसे आपकी कीर्ति रूप मक-रन्द सदा निर्झरित होता रहता हो और वह मकरन्द भक्त रूप द्वार से निकलता रहता और उसका रसास्वाद भक्त मण्डल करके तन्मय होता रहता हो। भक्तों के समाज बैठकर आपका गुणानुवाद मिले तो आप हमें जिस स्थिति भी जहाँ भी रखना चाहें वहीं रहना स्वीकार है किन्तु गुणानुवाद श्रवण करने को न मिले, जहाँ आपके सुमधुर नाम और गुणों का कलित कीर्तन न होता हो, वह मोक्ष भी हमें न चाहिये, उस अपवर्ग को भी वारम्बार प्रणाम है, उस कैवल्य पद की भी मैं इच्छा नहीं करता।

आप आग्रह करेंगे, कि अच्छा भाई! जो तुम्हारी इच्छा हो वही माँग लो, जो तुम चाहते हो उसी की याचना कर लो, तो प्रभो! यदि आपका अत्यन्त आग्रह ही है, आप वर देने को व्यग्र ही बने हुए हैं, तो आप अपनी कीर्ति सुधा का पान कराने के निमित्त मुझे दश सहस्र कान दे दें। दश सहस्र कानों से जितना आपका सुयश सुन सकते हों, उतनी शक्ति आप मुझे दे दें।

आप कहेंगे, यह क्या वरदान माँगा, सहस्रों कर्णों से सुयश सुनने से क्या होगा, कोई दूसरा सुन्दर सा वर माँग लो।" सो, प्रभो! मुझे तो यही वर अच्छा लगता है, इसके अतिरिक्त अन्य वर भाता ही नहीं। अन्य विषय सुहाता ही नहीं। इस वर में क्या बताने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। हे पुण्य कीर्ति प्रभो! जो तत्त्वमार्ग के बटोही हैं, कैवल्यपथ के पथिक हैं, किन्तु किसी कारण से उस पथ से पतित हो गये हैं, विषय वासना रूपी कीचड़ वनमें फँस गये हैं। उनके शरीर से कहीं महन्मुखच्युत आपके चरण कमल मकरन्द के कणों से युक्त वायु लग जाय, तो वे पुनः सचेत हो उठते हैं। उठकर बैठ जाते हैं, पुनः अपने गन्तव्य मार्ग पर पहुँच जाते हैं जिस पद अरविन्द मकरन्द के संसिक्त पवन में इतनी सामर्थ्य है यदि वही मकरन्द साक्षात् सेवन करने को मिल जाय, तो फिर माँगने के लिये अन्य अवशेष ही क्या रहा? फिर किसी दूसरे वर की आवश्यकता ही क्या है?

आप पूछेंगे कि तुम मेरे सुयश श्रवण के लिये इतने उत्सुक क्यों हो? क्यों सदा सर्वदा धारा प्रवाह रूप से मेरे गुणों को,

मेरी कमनीय कथा को मेरे सुयशों को सुनने समुत्सुक हो ?"

सो, प्रभो ! मैं पूछता हूँ, लक्ष्मी जी को किस बात की कमी थी, उनकी तनिक से कटाक्ष के लिये ब्रह्मादि देव सदा लालायित रहते थे। बड़े-बड़े पृथ्वीपाल, दिग्पाल, लोकपाल तथा ब्रह्माण्ड-पाल लक्ष्मी जी की तनिक से कृपा प्रसाद को पाकर कृतार्थ हो जाते हैं, उन्हें किसी वस्तु की आकांक्षा हो सकती थी। एक बार अत्यन्त प्रसन्न होकर आपने उनसे भी वर माँगने को कहा था। तो उन्होंने यही तो कहा था आपके मङ्गलमय सुयश के श्रवण से सभी सद्गुण स्वतः ही प्राप्त हो जाते हैं। वृक्ष की जड़ को पकड़ने से पूरा वृक्ष पकड़ाई में आ जाता है। आपकी कथा सुधा का चसका जिसे एक बार लग गया, जिसने बिना इच्छा के, बिना श्रवण के दैववश भाग्यवश संयोग से साधु समाज में पहुँचकर एक बार भी आपके सुयश का श्रवण कर लिया, फिर वह अन्य विषय वार्ताओं को विषवत् समझ कर त्याग देगा। यदि वह साक्षात् पशु प्रकृति का ही हो तब तो बात ही दूसरी है, किन्तु गुणग्राही पुरुष आपकी उत्तम कीर्ति के श्रवण से कभी उपरत नहीं हो सकता। क्योंकि समस्त सद्गुणों के स्रोत तो आपके चरण कमल ही हैं।

हे लक्ष्मीपते ! जिस समय जगज्जननी भगवती लक्ष्मीजी अपने पिता समुद्र की गोदी से उठकर हाथ में जयमाला लेकर अपने अनुरूप समस्त सद्गुणों की खान सबसे महान् पति की खोज में निकलीं तो ऋषि, मुनि, देव, गन्धर्व, यक्ष राक्षस असुर तथा सभी जाति के श्रेष्ठ पुरुषों के समीप गयीं, किन्तु उन्हें अपनी इच्छा के अनुरूप कोई वर नहीं मिला। तब उन्होंने

सर्वगुणों की खान सर्वगुण निधान महान् आप भगवान् का आश्रय ग्रहण किया। आपने भी कृपा करके उनके ऊपर अनुग्रह किया, आपने हृदय का हार बनाया। उन्होंने आप गुणालय को नम्रता और भक्ति द्वारा प्रसन्न करके चरण कमलों की सेवा का वरदान प्राप्त किया। इसीलिये वे अपने कमल से भी कोमल करों से आपके चरणारविन्दों को सुहलाती रहती हैं, आपकी सेवा में सदा संलग्न बनी रहती हैं। आपका सर्व भाव से भजन करती हैं। मेरे मन में माँ कमला के सदृश सेवा करने की लालसा उठती है। मैं भी चाहता हूँ अत्यन्त उत्सुकता के साथ, महान् उत्साह के सहित सम्पूर्ण सद्गुणों के एकमात्र आश्रय, सर्व गुण निधान समस्त श्रेष्ठ पुरुषों से भी परम श्रेष्ठ आप भगवान् का भजन करूँ।"

आप कहेंगे सेवा करने के लिये तो सभी स्वतंत्र हैं, तुम सेवा कर ही सकते हो, इसमें पूछने की कौन-सी बात है? सो प्रभो! पूछने का एक कारण है। जब एक वस्तु पर अधिकार जताने वाले दो व्यक्ति हो जाते हैं, तो उनमें परस्पर में कलह हो जाती है, एक दूसरे से स्पर्धा करने लगते हैं, मन ही मन अपने प्रतिस्पर्धी से डाह करने लगते हैं, माँ लक्ष्मी सदा आपकी सेवा में संलग्न रहती हैं, आपकी मुँह लगी हैं, सेवा की एक मात्र उत्तराधिकारिणी अपने को ही समझती हैं, जब वे देखेंगी, मेरे स्थान को हथियाने वाला, मेरे अधिकार में स्वत्व प्रकट करने वाला यह कोई दूसरा भी व्यक्ति आ गया है, तो वे बिना बात ही उलाहना देने लगेंगी, कलह करने लगेंगी। आपके कान भरने लगेंगी। आपकी लक्ष्मीजी ऐसा नहीं कर सकतीं? सो, प्रभो! यह बात नहीं। प्रतिस्पर्धी के प्रति ईर्ष्या स्वाभाविक है, हम दोनों

में कलह होगी होगी अवश्य होगी। जगज्जननी के साथ मेरा वैमनस्य स्वाभाविक है अवश्यम्भावी है अनिवार्य है। यह संभव नहीं एक ही उद्योग में लगे रहने वाले, एक ही स्वार्थ में समान भाव से संलग्न दो पक्षों में मनोमालिन्य न हो, कहा सुनी न हो। यह तो होगा ही और हम दोनों का अभियोग भी आपके पास आवेगा। उस अभियोग में जो निर्णय होगा, वह भी मैं जानता हूँ, मैं चाहें वादी होकर आऊँ या प्रतिवादी बन कर आपकी सभा में न्याय मेरे ही पक्ष में होगा।

आप पूछेंगे—तुझे ऐसा विश्वास कैसे हुआ ? सो, भगवान्! यह तो जग विदित है, आपका नाम ही इसकी साक्षी दे रहा है। आपका नाम दीनवत्सल है, दीनबन्धु तथा दीनानाथ है। लक्ष्मीजी तो स्वयं साक्षात् महालक्ष्मी ही ठहरीं। संसार में उनसे अधिक सम्पन्न कोई है ही नहीं। जिनके ऊपर इनका तनिक भी कृपा कटाक्ष हो जाता है, वही बड़ा व्यक्ति बन जाता है, वही श्रीमान्, लक्ष्मीवान्, सम्पन्न तथा भाग्यवान् कहलाता फिर जो स्वयं ही समस्त ऐश्वर्य, श्री तथा कान्ति आदि की अधिष्ठातृ देवी हों, उनके सम्बन्ध में तो कहना ही क्या ? उनकी मेरी कलह होगी, उनकी अपेक्षा मैं सर्व प्रकार से दीन हीन हूँ, आप ठहरे दीनवत्सल। आपको किसी प्रकार का लोभ लालच तो है नहीं किसी भी वस्तु की अपेक्षा तो है नहीं। अपेक्षा तो उसे होती है, जिसके पास उस वस्तु का अभाव हो, आप तो सब प्रकार से परिपूर्ण हैं आप्तकाम तथा आत्माराम हैं, सदा सर्वदा अपने ही स्वरूप में रमण करने वाले हैं। अतः मुझे पूर्णरीत्या विश्वास है, कि आप सब प्रकार से मेरा पक्ष लेंगे। आपका निर्णय सन्ध्यात्मक न होगा।

आप कह सकते हैं, "झगड़े की कौन सी बात है। मेरे दो

चरण हैं, एक की सेवा लक्ष्मीजी करती रहें एक की तुम करो।" सो, प्रभो! झगड़ा तो अनिवार्य है। वे दक्षिण चरण की सेवा कर रही होंगी मैं वाम चरण की, तब मेरी इच्छा दक्षिण चरण की होगी, लक्ष्मीजी इसमें कुछ आनाकानी करेंगी तो आप कह देंगे अच्छा इसी की इच्छा पूरी होने दो। फिर मैं चाहूँगा वाम चरण की ही सेवा करूँ, इस पर दायें बायें बार बार करने से सुकुमारी भगवती जगज्जननी कमला माँ खीज जायँगी, तब मैं ही दोनों चरणकमलों को गोदी में रखकर एक साथ ही दोनों की सेवा करूँ तो इसपर अपना अधिकार छिन जाने के भय से लक्ष्मीजी लड़ जायँगी, उस समय आप उन्हें हटाकर चरणों से पृथक् करके मुझे ही उभय चरणारविन्दों की सेवा समर्पित कर देंगे।

हे कृपासिन्धो! हे भक्तवत्सल! ये कौपीनधारी! जटाधारी घर बार त्यागी बाबाजी इसीलिये तो घर द्वार, कुटुम्ब, परिवार, पुरजन परिजन तथा समस्त समृद्धि और स्वजनों को छोड़कर आपकी शरण में आ जाते हैं। उन्हें पूरा विश्वास है कि आप माया प्रपञ्च से परे हैं। मायिक गुणों के कार्यों का आप में लवलेश मात्र भी नहीं है। आप माया रहित मुकुन्द हैं। लक्ष्मी जी आपकी गृहिणी हैं इस नाते से आप उनसे प्यार नहीं करते, वे आपकी भक्ता हैं, आप में अनुरक्ता हैं, आपकी अनन्योपासिका हैं, इसीलिये आप उनके प्रति स्नेह प्रदर्शित करते हैं, जब कोई अत्यन्त दीन हीन साधनविहीन शरण में आ जाता है, तो लक्ष्मीजी की अपेक्षा उससे ही अधिक स्नेह करने लगते हैं। इसी आशा पर तो सर्वत्यागी विरागी साधु जन सब कुछ त्याग कर आपके भजन भाव में ही डूबे रहते हैं, आपको ही अपना अन्य आश्रय मानते हैं।

साधु पुरुषों का एकमात्र धन आपका सेवन मात्र ही है। आपके चरणों का सदा सर्वदा अव्याहत गति से ... सतत स्मरण बना रहे यही उनकी भावना है, यही ... है, यही इच्छा है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रयोजन प्रतीत ... ही नहीं।

हे वरदाता! आपने मुझसे वारम्बार कहा—"वरदान माँग ले, अपनी इच्छानुसार वर प्राप्त कर ले। मैं तो ऐसा अनुभव करता हूँ कि आप ऐसा कहकर मेरी परीक्षा ले रहे हैं, कि इच्छित वर का प्रलोभन होता है या नहीं। मैं आपकी इस वाणीको जग को मोह में डालने वाली माया के चक्कर में घुमाने वाली मानता हूँ। आप परोक्ष प्रिय हैं। आपकी वेद रूपी वाणी भी पुष्पित वाणी है, प्राणियों को मोह में डालनेवाली है। जैसे उसमें "स्वर्ग कामोयजेत" स्वर्ग की कामना से यज्ञ करना चाहिये बस, इस वाक्य का गूढ़ार्थ न समझकर लोग क्षयिष्णु स्वर्ग चक्कर में फँस जाते हैं। आप सर्वसमर्थ सर्वान्तर्यामी को भू जाते हैं। बिना प्रयोजन से तो मन्द बुद्धिवाला भी कार्यों में प्रवृ नहीं होता। यदि मनुष्य वेद वाणी रूपी डोरी में बँधे न हों उन्हें फल की इच्छा न होती तो कर्म ही क्यों करते। क्यों भाँ भाँति के कष्ट कर और श्रम साध्य कर्मों को कठिनता के सा अनुष्ठान करते? क्यों जन्म मरण के चक्कर में फँसकर वारम्बा जनम लेते और वारम्वार मरते। क्यों आवागमन के हिंडोले प घूमते रहते।

हे मायापति! आप मुझे वरदान का लोभ क्यों देते हैं मैं तो जन्मजात लोभी हूँ। मनुष्य स्वभाव से ही माया द्वार विमोहित बना हुआ है। मोह ममता के कारण ही तो यह घ

जन, भूमि, दारा, सुत, माता पिता तथा अन्य सबको अपना मानकर इनके मोह में फँसता है, मुझे दूसरी स्त्री मिले, मेरे सुन्दर सुयोग्य पुत्र हों, इन बातों की बार बार इच्छा करता है। स्वामिन्! मरे को क्या मारना, गिरे हुए को क्या गिराना। अनुत्तीर्ण हुए की क्या परीक्षा लेना। आप मेरी इच्छा पर निर्भर न रहिये। मेरे वर माँगने की अपेक्षा न करें। आप तो मेरे पिता हैं, जनक हैं। जैसे पिता बिना पूछे ही पुत्र का हित करता है, जिस बात में उसका कल्याण हो, उसे वह बिना उसे जताये ही करता रहता है। अतः मैंने अपनी उन्नति अवनति सम्पूर्ण भार आपके श्री चरणों में सौंप दिया है। जिसमें मेरी भलाई जिसे पाकर मेरा परम कल्याण हो,उसी वस्तु को दीजिये मेरे तो सर्वस्व आप ही हो। मुझसे वर माँगने वाली बात न कहिये। मैं सदा सर्वदा आपके कीर्तन में आपकी कथा श्रवण में संलग्न रहूँ, यही मेरी भावना है यही मेरी एकमात्र इच्छा है,इसके अतिरिक्त मुक्ति तथा मुक्ति की मुझे लालसा नहीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! महाराज पृथु की ऐसी अनन्य निष्ठा देखकर भक्त भावन भगवान् ने उन्हें अनन्य भक्ति का वर दिया। यह मैंने अत्यन्त संक्षेप में भगवान् के अंशावतार पृथ्वीपाल पृथु की स्तुति कही अब जिस प्रकार प्रचेताओं ने भगवान् विष्णु को रुद्रगीत से प्रसन्न करके उनकी स्तुति की उसे सुनिये। रुद्रगीत का वर्णन भागवती के पञ्च गीतों में करूँगा।

छप्पय

चापैं ज्यों श्री चरन, चहूँ चाँपन हीं हू नित।
कलह करें श्री मातु जितावें मोकूँ निश्चित॥
हो प्रभु अशरन शरन दीन वत्सल वर दाता।
सतत भक्त हित निरत रहो सुतहित ज्यों माता॥

मोह पाशमें जीव बँधि, चौरासी चक्कर फिरैं।
मेंटो माया मोह प्रभु, बार बार बन्दन करैं॥

पद

भक्तनि सत सङ्गति प्रभु ! पाऊँ।
साधु सभा महँ सुनूँ सतत यश, अनत कहूँ नहिं जाऊँ ॥१॥भ०
प्रेम सहित पद पदुम पलोटूँ, पुनि पुनि हिय चिपटाऊँ।
मृदुल चरन वर कर कपोल धरि, तनकी ताप मिटाऊँ ॥२॥भ०
कमला कलह करैं करुनाकर, तनिक नहीं घबराऊँ।
दीनदयाल पतित प्रभु हौं, अति दीन कहाऊँ ॥३॥ भ०
धन, जन, विषय, भोग, इन्द्रिय, सुख, स्वरग मोक्ष नहिं चाऊँ।
कथा कीरतन करत भव, सागर सहज तराऊँ ॥४॥ भ०

पृथुकृत भगवत् स्तुति

पृथुरुवाच

वरान् विभो त्वद्वरदेश्वराद् बुधः,
कथं वृणीते गुणविक्रियात्मनाम् ।
ये नारकाणामपि सन्ति देहिनां,
तानीश कैवल्यपते वृणे न च ॥१॥
न कामये नाथ तदप्यहं क्वचित्,
न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः ।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो,
विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः ॥२॥
स उत्तमश्लोक महन्मुखच्युतो,
भवत्पदाम्भोजसुधाकणानिलः ।
स्मृतिं पुनर्विस्मृततत्त्ववर्त्मनां,
कुयोगिनां नो वितरत्यलं वरैः ॥३॥
यशः शिवं सुश्रव आर्यसङ्गमे,
यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत् ।
कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं,
श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया ॥४॥
अथाभजे त्वाखिलपूरुषोत्तमं,

गुणालयं पद्मकरेव लालसः ।
अप्यावयोरेकपतिस्पृधोः कलिः,
न स्यात्कृतत्वच्चरणैकतानयोः ॥५॥
जगज्जनन्यां जगदीश वैशसं,
स्यादेव यत्कर्मणि नः समीहितम् ।
करोपि फल्ग्वप्युरु दीनवत्सलः,
स्व एव धिष्ण्येऽभिरतस्य किं तया ॥६॥
भजन्त्यथ त्वामत एव साधवो,
व्युदस्तमायागुणविभ्रमोदयम् ।
भवत्पदानुस्मरणादृते सतां,
निमित्तमन्यद्भगवन्न विद्महे ॥७॥
मन्ये गिरं ते जगतां विमोहिनीं,
वरं वृणीष्वेति भजन्तमात्थ यत् ।
वाचा नु तन्त्या यदि ते जनोऽसितः,
कथं पुनः कर्म करोति मोहितः ॥८॥
त्वन्माययाद्धा जन ईश खण्डितो,
यदन्यदाशास्त ऋतात्मनोऽबुधः ।
यथा चरेद्बालहितं पिता स्वयं,
तथा त्वमेवार्हसि नः समीहितुम् ॥९॥

प्रचेताओं द्वारा विष्णुभगवान् की स्तुति

(३०)

नमो नमः क्लेशविनाशनाय,
निरूपितोदारगुणाह्वायाय।
मनोवचोवेगपरोजवाय,
सर्वाक्षमार्गैरगताध्वने नमः॥

(श्रीभा० ४ स्क०३० अ० २२ श्लो०)

छप्पय

पितुने आयसु दई प्रचेता! सृष्टि बढ़ाओ।
शिवकूँ करि सन्तुष्ट उदधि ढिंग तपकूँ जाओ॥
आयसु सिर धरि रुद्र-गीततैं आराधे हरि।
भये प्रकट परमेश करें इस्तुति पद सिर धरि॥
भक्तवछल भवभय हरन, रमारमन! सब सुख सदन।
जीवनधन! अशरन शरन, बन्दौं पुनि-पुनि प्रभु चरन॥

महाराज पृथु के वंश में एक प्राचीन बर्हिनामक राजर्षि हुए हैं, उनका विवाह समुद्र की कन्या शतद्रुति

---

* भगवान् की स्तुति करते हुए प्रचेतागण कह रहे हैं, जो हरि शरणागतों के क्लेशों को विनाश करने वाले हैं, उन्हें बारम्बार नमस्कार है। जिन प्रभु के नामों को और उदार गुणों को शास्त्रों ने सर्वश्रेष्ठ

के साथ हुआ। शतद्रुति के गर्भ से महाराज प्राचीनबर्हि के दश पुत्र हुए। उनका रूप, रंग शील, स्वभाव, आकृति, प्रकृति एक सी ही थी। अतः वे दशों प्रचेता के नाम से ... हुए। महाराज प्राचीनबर्हि ने उन्हें प्रजा की वृद्धि के लिये ... दी। उन्होंने सोचा बिना तपस्या के कोई कार्य ... सिद्ध नहीं होता, अतः वे तपस्या करने और तप के ... वरदाताओं में श्रेष्ठ भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने समुद्र किनारे चले गये और वहाँ दश सहस्र वर्षों तक ... करते रहे।

जब वे तपस्या करने जा रहे थे, तब भगवान् रुद्र ने उन्हें रुद्रगीतका उपदेश दिया था। उसी रुद्रगीतका अनुष्ठान करते हुए वे भगवान् की आराधना में लगे रहे। दश सहस्रवर्ष के अनन्तर भगवान् उनके सम्मुख प्रकट हुए। तब उन्होंने बड़ी नम्रता के साथ विनीत भाव से भगवान् की स्तुति की।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! प्रचेताओं के सम्मुख भगवान् विष्णु अष्टभुजाओं को धारण करके गरुड़पर चढ़े हुए प्रकट हुए। तब दशों भाइयों ने गद्‌-गद्‌ कंठ से प्रार्थना करते हुए इस प्रकार कहा—"हे स्वामिन्! इस संसार में सभी प्राणी क्लेशरूपी पंक में फँसे हुए हैं, जो इस पंकसे निकलना चाहते हैं और जिन्हें आपभी वरणकरना चाहते हैं, वे आपके शरण में आने, की इच्छा करते हैं उन शरणागत भक्तों के समस्त

साधन बताया है, उनको बारम्बार नमस्कार है, जिनका वेग मन वाणी से भी बढ़कर है, तथा जिनका मार्ग सभी इन्द्रियों से परे है उन परमात्मा के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

क्लेशों का आप विनाश कर देते हैं, उन्हें क्लेश रहित बना देते हैं। ऐसे क्लेशहारी केशव को हम श्रद्धाभक्ति सहित प्रणाम करते हैं।

प्रभो! वेद आपकी निश्वास है। वे साधकों को मुक्ति का साधन बताते हैं, भवसागर में भटके हुए प्राणियों को पुण्य पथ दिखाते हैं। उन वेदों में आपको पाने के, आवागमन से छूटने के दो ही उपाय बताये हैं। आपके उदार गुणों का बखान तथा आपके मधुमय आनन्दमय नामों का श्रवण और गान इन दो के ही द्वारा आपकी उपलब्धि हो सकती है। वैसे कोई दौड़कर अपने पुरुषार्थ से आपको पकड़ना चाहे तो यह सम्भव नहीं। प्राणी उसी को पकड़ सकता है, जिसका वेग अपने से न्यून हो। इन्द्रियों का वेग सबसे अधिक है। इन्द्रियों से भी बढ़कर वेग मन का है, किन्तु आपका वेग तो वाणी तथा मन से भी असंख्यों गुना बढ़कर है, फिर उसे अन्तःकरण कैसे पा सकता है, आप स्वयं ही कृपा करें, तभी सम्भव हो सकता है। इन्द्रियाँ जिस मार्ग से जाती हैं, आपका मार्ग तो इन सबसे निराला है आप तो परोक्ष प्रिय प्रभु हैं ऐसे आप विलक्षण गति वाले विभुके पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

हे सर्व स्वरूप! आपके लिये कोई कर्तव्य नहीं, आपकी उत्पत्ति नहीं, आपमें किसी प्रकार का विकार नहीं, ह्रास नहीं, इच्छा नहीं, कामना नहीं, चञ्चलता नहीं। आप नित्य शुद्ध, बुद्ध, शान्त तथा सदा सर्वदा स्व स्वरूप में अवस्थित रहते हैं। फिर भी हम मायाबद्ध जीवों को मनरूपी निमित्त कारण होने से यह सम्पूर्ण दृश्य प्रपञ्च यह दृश्यमान द्वन्द्व,

यह समस्त द्वैत आपमें विलसित प्रतीत हो रहा है। वास्तविक बात यह है कि आप लीला के लिये, क्रीड़ा के लिये, विनोद के निमित्त अपने ही माया के गुणों को स्वीकार करके जब जगत् को बनाना चाहते हैं, तब ब्रह्मा बन जाते हैं, पालन करना चाहते हैं, विष्णु वेष बना लेते हैं, संहार करना चाहते हैं, रुद्र रूप रख लेते हैं। ये आपसे भिन्न नहीं, पृथक् नहीं। कार्य भी आप हैं और उसका कारण भी आप हैं। जो अनवस्थित बुद्धि वाले व्यक्ति हैं, वे आपमें द्वैत देखते हैं, सुव्यवस्थित सुस्थित बुद्धिवाले तो सबमें सर्वत्र आपका ही दर्शन करते हैं। आप सर्वात्मा है, सर्वरूप हैं, ऐसे अद्वय स्वरूप आपको बारम्बार नमस्कार करते हैं।

हे शुद्ध स्वरूप ! कोई आपको सत्व गुण का अधिष्ठातृ देव कहते हैं, किन्तु प्रभो ! सत्वरज और तम यह तो आपकी माया के गुण हैं, आप तो इन तीनों गुणों से परे हैं। इन तीनों गुणों से परे जहाँ माया प्रपञ्च की गंध नहीं ऐसे विशुद्ध सत्व स्वरूप हैं संसार का बंधन जीवों को तभी तक है जब तक उन्हें आपके शुद्ध स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। जहाँ आपका यथार्थ ज्ञान हुआ नहीं वहाँ संसार बंधन अपने आप दूर हो जाता है। आप समस्त सात्वतों के प्रभु हैं अधिपति हैं स्वामी हैं। आप समस्त आनन्द देने वाले घन हैं, आनन्दघन हैं वसुदेवनन्दन हैं, समस्त जीवों को अपनी ओर आकर्षित करने वाले हैं, ऐसे कृष्ण स्वरूप आप भगवान् वासुदेव के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

हे कमलाकान्त ! आपको कमल सबसे अधिक प्रिय है सम्भव है इसलिये कि आप नारायण हैं, जलधि में सदा शयन करते रहते हैं। कमल भी जलज है। इसलिये तो आपकी नाभि

से समस्त जगत् का उद्भव स्थान कमल उत्पन्न हुआ। उसी से आप के पुत्र कमलासन का प्रादुर्भाव हुआ। आपकी कान्ता कमला भी कमलवन विहारिणी हैं। हे कमलप्रिय ! कमल को जैसे आपने अपनाया है, वैसे ही हमें अपनाइये। यद्यपि कमल में कोमलता, कमनीयता, कान्ति तथा सुरभि सुगन्ध है, किन्तु आप को कोई गुणों से कैसे रिझा सकता है। समस्त सद्गुणोंके तो आप ही एकमात्र उत्पत्ति स्थान हैं। कमल को गुणों के कारण नहीं अपनी कृपा के द्वारा ही अपना लिया है। तभी तो आप सदा सर्वदा कमल कुसुमों की अम्लान माला अपने कमनीय कंठ में धारण किये रहते हैं। नयनों में कमल की आभा तथा करों में कमलों की कोमलता और चरणों में कमलों जैसी ललाई लुनाई मृदुता और मनोहरता स्थापित करते रहते हैं। इसीलिये आपके कर और चरण करारविन्द तथा चरणारविन्द कहलाते हैं। आपके पीताम्बर की अद्भुत अनुभव आभा कमल कुसुम की केसर के सदृश निर्मल तथा पीली है। ऐसे सम्पूर्ण भूतों के आश्रय स्थान, कमल आश्रयस्थान, कमल को गौरव प्रदान करने वाले, सर्व साक्षी कमलाकान्त के कोमल चरणकमलों में हमारा बारम्बार नमस्कार है, पुनः पुनः प्रणाम है, शत-शत वन्दन है।

प्रभो ! हम लोग दैहिक दैविक तथा भौतिक त्रितापों से तापित हो रहे हैं। इन दुखों से दुखी होकर सुख की इच्छा से भौतिक भोगों में सुख की खोज कर रहे हैं, किन्तु सुख स्वरूप तो आप ही हैं आप के अतिरिक्त संसार में सुख कहाँ, जब जीव को आप के दर्शन हो जायँ, तभी उसके सम्पूर्ण दुःख दूर हो सकते हैं। आपने हम त्रिताप पीड़ितों पर अत्यन्त ही अनुग्रह की, अहैतुकी कृपा की, आपने हम पर ही कृपाकरके यह सर्वक्लेशनाशकस्वरूप प्रकट किया है, हमारे ही दुःख दूर करने को आपने यह अनुपम

छवि दिखाई है। रूप रहित आपने यह दिव्य रूप प्रकट किया है इससे बढ़कर हम पर आपकी और कौन सी अनुग्रह हो सकती है। आपकी कृपा का यह अनुपम प्रसाद पाकर हम सब अत्यन्त ही कृतार्थ हो गये। ऐसे आप कृपासागर: के पादपद्मों में हमारा पुनः पुनः प्रणाम है।

प्रभो! हम अपने स्वरूप को भूल गये हैं, आप की वत्सलता तथा दास्यभाव का विस्मरण कर चुके हैं आप दीनबन्धु हैं, दीनानाथ तथा दीनवत्सल हैं, सर्वसमर्थ हैं। भूले भटकों को पथपर लाने वाले हैं, कोई अज्ञबालक अग्नि में हाथ डाल रहा था तीक्ष्ण धार वाले छुरा को पकड़ने दौड़ रहा हो, तो समर्थ उसे सावधान कर देते हैं, उसे स्मरण दिला देते हैं, कि क्लेशकारक है। इसी प्रकार आप सर्व समर्थ स्वामी समय पर यह स्मरण कर लिया करें कि ये हमारे हैं, हमारे आश्रित हमारे सेवक अनुचर किंकर तथा शरणागत हैं, स्वामिन्! इ से ही हमारा उद्धार हो जायगा। हम जैसे क्षुद्र जीवों को जो सर्वदा सकामकर्मों में ही संलग्न रहते हैं बिना स्वार्थ के वि संसारी कामना के कोई काम करते ही नहीं, उनका स्मरण य महापुरुष भी करले, वे भी यदि उन्हें अपना कहकर स्वीकार लें इतने से ही साधारण जीव के समस्त क्लेश शान्त हो जाते हैं अतः प्रभो! हमें अपना बनालें। हे प्रपन्न पारिजात! हमें अपनी शरण में लेलें, अपनी प्रपत्ति प्रदान करें। हे भद्रनाशन! हमारे समस्त अमङ्गलों का नाश कर दो। हमारे सम्पूर्ण दुरितों को दूर कर दो हमें अपना दास बना लो। हे दयासिन्धो! कब से हम इस भव सागर में भटक रहे हैं। कब से क्लेश सहन कर रहे हैं, आप क्लेशहारी हो हमारे समस्त क्लेशों को हर लो आप के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

प्रभो! आप हमसे वरदान माँगने को कहते हैं आपके दर्शन हो जाने पर भी फिर किसी वरदान की आवश्यकता रह जाती है क्या? विवाह हो जाने पर बारात की आवश्यकता रह जाती है क्या? सुमेरु के समीप जाकर भी सुवर्ण याचना की आवश्यकता अनुभव होती है क्या? हे सर्वज्ञ! जो न जानता हो उसे जनाया जा सकता है। आप तो घट-घट की जानने वाले हैं। आप अन्तर्यामी हैं। सम्पूर्ण चराचर जीवों के अन्तःकरण में नित्य निरन्तर निवास करते हैं, किसी के मन की कोई भी गुप्त से गुप्त बात आपसे छिपी नहीं रहती। जब सभी की इच्छाओं के आप साक्षी हैं ज्ञाता हैं, तब जो आपके उपासक हैं, आप को ही अपना सर्वस्व समझते हैं, उनकी कोई भी इच्छा आपसे छिपी होगी, इसे कौन मान सकता है, इसपर कौन विश्वास कर सकता है।

हे शुद्ध-बुद्ध आनन्द स्वरूप स्वामिन्! आप मुक्ति मार्ग के प्रवर्तक हैं। विविध वेष बनाकर मुमुक्षुओं को मुक्ति का मार्ग दिखाते हैं। दिखाते क्या हैं आप स्वयं मोक्षस्वरूप हैं। जब आपही हम पर प्रसन्न हो गये। आपने ही हम दीनों पर दया करके अपने देवदुर्लभ दर्शन दिये, तब अन्यवर माँगने को रह ही क्या गया, हमने तो सब कुछ पा लिया, अपनी उपासना का फल आपके दर्शनों से ही प्राप्त कर लिया। तथापि आपका आग्रह ही है, तो हम एक ही वर माँगते हैं, उसे कृपा करके आप हमें दें।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! प्रचेताओं ने भगवान् से जिस प्रकार सत्सङ्गति का वर माँगा, उस प्रसङ्ग को मैं आगे कहूँगा, आप सब अत्यन्त समाहित मनसे इस परम पुण्यप्रद प्रसङ्ग को प्रेम पूर्वक श्रवण करें।

छप्पय

शुद्ध सत्व सरवग सनातन सब घटवासी।
अधिपति अखिल अनन्त अनामय आनँद रासी॥
कमल कुसुम गरमाल कमल लोचन कमलाकर।
कमल सरिस कर चरन कमलके सर सम अम्बर॥
दै दरसन दासनि दया, दरसाई दुख दूरि करी।
अभिमत वर पाये सकल, माँगे वर यह तऊ हरि॥

पद

दयामय! दरसन दै दुख टारे।
अति उदार गुन नाम तिहारे, अगनित प्रानी तारे ॥१॥ द०
नित्य निरंजन निराकार हरि, माया गुन स्वीकारे।
उतपति थिति लय करन जगत तुम, हरिहर अज तनु धारे॥२॥
कमल सरिस कोमल मनहर वर, कर पद नयन तिहारे।
दरशन दीये भये कृतारथ, शीतल नयन हमारे ॥३॥ द०
हो सरवज्ञ सकल घटवासी, सबकी जानन हारे।
सन्त समागम सतत मिलै प्रभु, नैया लगे किनारे ॥४॥ द०

प्रचेताओं द्वारा-भगवान् की स्तुति (२)

(३१)

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत् संगिसंङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥
(श्रीभा० ४ स्क० ३० अ० ३४ श्लो०)

छप्पय

करमनि भोगत भोग भ्रमैं जबतक जा जग महँ ।
तब तक संतनि सङ्ग भक्ति होवे तिनि पग महँ ॥
सत संगति के सरिस जगत महँ सुख कछु नाईं ।
तहँ सुख सरिता बहै सन्त जहँ हरि गुन गाईं ॥
सब तजि तव पद प्रेम करि, पग-पग पृथ्वी पै फिरत ।
तिनि संतनि सतसङ्ग सब, भवभय दुख दारिद हरत ॥

इस संसार में जिसने भी जो कुछ प्राप्त किया है, सन्तों की सङ्गति से ही प्राप्त किया है। इस संसार में कोई सच्चे मित्र हैं, तो संत ही हैं इस लोक मे तथा परलोक में ही संत ही कालक्षेप को सरल सुखद सरस बना सकते हैं, सब कुछ प्राप्त हो सकता है, किन्तु संत सङ्ग अत्यंत दुर्लभ है, तभी तो भगवान् के दर्शन होने

* भगवान् की स्तुति करते हुए प्रचेतागण कह रहे हैं—प्रभो ! भगवान् के भक्तों की एक लवमात्र की सङ्गति के सम्मुख हम लोग स्वर्ग तथा अपवर्ग को भी कुछ नहीं समझते, तो फिर इन मरणशील मानवों के भोगों की तो बात ही क्या है ?

पर भी प्रचेतागण स्तुति करते हुए उनमें सत्सङ्गति का ही वरदान माँग रहे हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! दसों भाई प्रचेतागण सम्मुख गरुड़ पर बैठे भगवान् की स्तुति करते हुए आगे कह रहे हैं—"प्रभो ! आपका दर्शन समस्त साधनों का फल है। जिसे फल प्राप्त हो गया फिर वे अन्य वस्तुओं की लिप्सा क्यों करेगा ? आप मोक्षपति हैं, जिसे चाहें जन्म मरण के चक्कर से छुड़ा सकते हैं, विमुक्त बना सकते हैं, किन्तु प्रभो ! हम मोक्ष की इच्छा नहीं करते मोक्ष इच्छा करने से-माँगने से-मिलती भी नहीं। मोक्ष के लिए आप जिसे वरण करें, उसे ही मिलती है। वह आपकी इच्छा पर निर्भर है, उसकी याचना ही क्या। फिर भी आप वर माँगने को कहते हैं, तो इसका अर्थ यही है, हमारे कर्म-बन्धन कटे नहीं। न कटें, हमें इसकी चिन्ता भी नहीं। आपकी माया जो आपकी आज्ञा से नचाना चाहता हो, तो नचाती रहे जब तक उसकी इच्छा हो भवाटवी में भ्रमाती रहे कर्मानुसार वह किसी से वैर कर ही नहीं सकता। उसके लिये ऊपर कोई है ही नहीं। वह चराचर में अपना स्वामी आपको जानेगा और अपने को सबका सेवक समझेगा अपने स्वामी से कोई वैर कैसे करेगा। भय भी दूसरे से ही होता है, जो सबमें आपको देखेगा वह भय किससे करेगा आपकी कथा श्रवण का यही फल है कि प्राणी मात्र से मैत्री भाव रखना तथा सबसे निर्भय हो जाना साधुओं की सङ्गति में यही दो बात देखी जाती है। ऐसी त्रैलोक्य पाविनी कथाओं के जो प्रेमी हैं, उन सन्तों का हमें सदा सहवास प्राप्त हो।

हे साधुओं के सर्वस्व स्वामिन् ! आपतो सम्पूर्ण चराचर के आश्रय हैं, किन्तु व्यवहार में बालकों के माता-पिता ही

आश्रय हैं स्त्री के पति आश्रय हैं, शिष्य के गुरु आश्रय हैं अज्ञों के विज्ञ आश्रय हैं, प्रजा के राजा आश्रय हैं, किन्तु जिन्होंने संसार के सभी सम्बन्धों को सदाके लिये त्याग दिया है, जिनका अपना कोई एक घर नहीं, जिनकी मति स्थिर हो चुकी है, जो तीर्थों को भी पावन बनाने की इच्छा से पृथ्वी पर पैदल ही परिभ्रमण करते रहते हैं, जो संसारी कथा वार्ताओं से मौन बने रहते हैं, उन परिव्राजक असंग सन्यासी महात्माओं के तो एकमात्र आप ही आश्रय हैं। वे अन्य लौकिक विषय बोलते ही नहीं बारम्बार आपका ही स्तवन करते रहते हैं, विविध भाँति से आपके ही गुणानुवादों का गायन करते रहते हैं, भाँति भाँति से आप को ही रिझाते रहते हैं। ऐसे वीतराग संतजनों का सतसंग हमें जन्म जन्मान्तरों में प्राप्त होता रहे, यही आपके पादपद्मों में पुनः पुनः प्रार्थना है।

स्वामिन्! हम पिताकी आज्ञा शिरोधार्य करके केवल सृष्टि वृद्धि के संकल्प से घर से निकले थे। उस समय हमें अपने कर्तव्य का कुछ भी बोध नहीं था, हमें कहाँ जाना चहिये, क्या करना चाहिये, किसकी आराधना में निमग्न रहना चाहिये, इन सब बातों का ज्ञान नहीं था, किंकर्तव्य-विमूढ़ बने आगे बढ़ते चले जाते थे। भाग्यवश आपकी अहैतुकी कृपा के कारण आपके प्रियतम सखा, भक्त तथा सर्वस्व स्वयं साक्षात् शंकरजी से अकस्मात् समागम हो गया। उन्होंने हमारे संकल्प को समझकर हमें रुद्रगीत का उपदेश दिया। साधना की विधि बतायी, आपके चरणों में प्रीति दृढ़ाई, पुण्य पथ की पन्था दिखायी। उपासना की प्रक्रिया समझाई। उसीका यह फल हुआ कि आज हम जन्म मरण रूपी कठिन रोग के एकमात्र श्रेष्ठतम चिकित्सक

आप भवभयहारी भगवान् का साक्षात् दर्शन कर रहे हैं, आप अशरण शरण शरणागत वत्सल सर्वशोकहारी सर्वेश्वर शरणमें पहुँच गये हैं। प्रभो! जब क्षणभर के समागम का ऐसा अद्भुत परिणाम है, जो सदा सर्वदा साधु सेवामें ही संलग्न रहते हैं। अपने व्यवहार, कार्य तथा विविध उपायोंसे उन्हें प्रसन्न बनाये रहते हैं, उनकी सेवा सुश्रूषा करते रहते हैं, उन बड़भागियों के भाग्य की तो बात ही क्या है? इस लिये पहिला वर तो हमें यह दीजिये कि सदा हमें साधुओं का सत्संग प्राप्त होता रहे।

हे पापहारी प्रभो! आपको कोई पुण्य कर्मों से ही प्राप्त करना चाहे तो असंभव है। हाँ पुण्य कर्म आप को प्रिय हैं। पुण्य कर्म आपके ही निमित्त किये जायँ, तब तो उनका करना सार्थक है, किन्तु पुण्य कर्म भी किये जायँ, और फिर उनके द्वारा स्वर्गादि लोक माँगे जायँ, तो यह तो कीच से कीच को धोने के समान हुआ। बड़े परिश्रम से अत्यंत सावधान होकर वेदों का अध्ययन किया गया और उनके द्वारा संसारी सुखों की ही इच्छा की तो उस अध्ययन में और पेट के लिये घास खोदने में अन्तर ही क्या रहा? अपने शरीर को कष्ट देकर, ब्राह्म मुहूर्त में उठकर सम्पूर्ण समय लगाकर गुरुओं की, विप्रों की तथा वृद्ध जनों की समाहित चित्त से सेवा भी की और उसके बदले में उनसे इन्द्रिय द्वारा भोगे जानेवाले तनिक सुखाभास रूप विषय भोग माँगे, तो उनमें और वेतनिक सेवकों में अन्तर ही क्या रहा? हे अभद्रनाशन प्रभो! भक्ति सहित भद्रजनों की वन्दना की, माता पिता भाई बन्धु तथा सुहृद्गणों की सम्पूर्ण प्राणियों की निर्दोष भाव से भक्ति की, उनके प्रति प्रेम प्रदर्शित किया, उन्हें नमस्कार प्रणाम किया और आशीर्वाद में ये ही सांसारिक सुख माँगे, तो इतनी बड़ी साधना धूलि में मिल गयी। व्रत उपवास करके, पञ्चाग्नि तापकर

दीर्घकाल तक जल में खड़े रहकर तपस्या की और उससे स्वर्गादि लोकों की आकांक्षा की तो मानों बिना ही गोबर के लीपदिया। अतः हे देव! हमारी तो आपके पादपद्मों में यही प्रार्थना है कि हमें ऐसा वर दीजिये कि हमने जो भी कुछ एकाग्र मन से वेदादि का अध्ययन किया हो, जो भी गुरु विप्र तथा वृद्धों की सेवा सुश्रूषा की हो, दोष बुद्धि त्याग कर वन्दनीय जनों की तथा सर्व भूतों की जो भी वन्दना की हो, समुद्र के जल में खड़े रहकर सहस्रों वर्षों तक जो भी कुछ जैसी भी तपस्या की हो वह सब आप सर्वेश्वर के सन्तोष का कारण हो, ये सब कर्म केवल आप की प्रसन्नता के ही निमित्त हों, इन सब के एक मात्र आप ही प्रसन्न हो। यह हमारा दूसरा वर है। हे विश्वम्भर! इस वर को आप हमें दें।

प्रभो! मशक क्या सुमेरु को फूँक से उड़ा सकता है। क्षुद्र मेढ़की क्या अनन्त सागर का पार पा सकती है, एक अल्पज्ञ प्राणी क्या पृथ्वीके रज कणों की, आकाश के तारागणों, की सभी प्राणियों के शरीर के रोमों की गणना करने में समर्थ हो सकता है? इसी प्रकार आपकी महिमा अनादि अनन्त हैउसका पारपाना प्राणियों के लिये सम्भव नहीं। स्वायंभुव मनु इतने शक्तिशाली है, इतने सामर्थ्यवान् हैं, फिर भी वे आपकी महिमा का पार नहीं पा सके। ब्रह्माजी तो मानों आपके पुत्र ही हैं, वेदगर्भ हैं चतुरानन हैं, सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करने वाले हैं वे भी आप की महिमा का थाह नहीं लगा सके, वे भी गाते-गाते थक गये। भगवान् महादेव जो शङ्कर सदाशिव कहलाते हैं जो प्रलयकाल में अपने तीसरे नेत्र से ही चराचर जगत् का संहार करने में समर्थ हैं, उन्हें भी आपकी महिमा का अन्त नहीं मिल सका वेद भी जिनकी महिमा का गान करते समय नेति

नेति कह कर चुप हो जाते हैं, तथा असंख्यों तपःपूत ज्ञानपूत विशुद्ध चित्त वाले ऋषि मुनि गण निरन्तर ध्यान मग्न रहने पर भी जिनकी महिमा को पूर्ण रीत्या जान नहीं सकते। फिर भी ब्रह्मा, मनु, इन्द्र रुद्र तथा समस्त ऋषि मुनि तथा देवगण जिनकी निरन्तर स्तुति करते ही रहते हैं, उससे विरत नहीं होते, उन्हीं आप की अपनी अल्पबुद्धि के अनुसार हमने भी स्तुति की। प्रभो! जैसे समुद्र का पूजन करते समय उन्हीं से एक चुल्लू जल लेकर उन्हें पाद्य अर्घ्य और आचमनीय जल देना उनका अपमान है, सूर्य का पूजन करते समय, एक क्षुद्र दीपक दिखाना उस तेजो राशि देव का उपहास करने के समान है, उसी प्रकार समस्त ज्ञान का भंडार, ज्ञानराशि ज्ञानस्वरूप आपसर्वज्ञ की आपकी ही दी हुई अल्पातिअल्प क्षुद्रातिक्षुद्र बुद्धि से स्तुति करना आपका अपमान करना है, किन्तु पुत्र जैसे समुद्र की चौड़ाई बताते समय अपने दोनों नन्हें-नन्हें हाथों को फैलाकर कहता है, समुद्र इतना बड़ा है, तो पिता उसकी मूर्खता पर क्रुद्ध न होकर हँस जाता है, प्रसन्न हो जाता है। इसी प्रकार हे परम पिता! हमने जो आप महामहिम की महिमा गाने की धृष्टता की है आप अवाङ्‌मनस गोचर की स्तुति करने की मूर्खता की है इसे आप अपनी उदारता से क्षमा करें, हम आपके पादपद्मों में बारम्बार नमस्कार करते हैं।

हे विशुद्ध ज्ञानमय प्रभो! आप सर्व व्यापक हैं। सर्व स्थलोंमें सर्वत्र समान रूप से व्याप्त हैं, आप विशुद्ध ज्ञान धन तथा सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, आप से श्रेष्ठ कोई पुरुष नहीं। आप पुरुषोत्तम परम पुरुष तथा महा पुरुष हैं। आप श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतम हैं। उत्तम से भी उत्तम हैं। पुरातनों से भी पुरातन हैं। आप त्रिगुणों से परे जो गुणातीत निर्मल सत्व है उसकी साक्षात् मूर्ति ही हैं। आप निरवयव के अवयव घनीभूत आनन्द हैं, उन्हें निर्मित

भी कैसे कहा जाय, क्योंकि सबके निर्माता तो आप ही हैं। अतः हे सत्य स्वरूप स्वामिन्! आपके पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! प्रचेताओं की ऐसी स्तुति सुनकर तथा उन्हें उनके अभिमत वर देकर भगवान् वासुदेव तुरन्त ही अपने परम धाम को पधार गये और प्रचेताओं ने भी ब्रह्माजी की आज्ञा से वृक्षों की पुत्र मारिषा से विवाह करके सृष्टि वृद्धि की उसी मारिषा के गर्भ से रुद्रशाप से शापित, दक्ष प्रजापति से शापित, दक्ष प्रजापति ने पुनः जन्म लिया।

यह मैंने अत्यंत संक्षेप में प्रचेताओं की स्तुति कही अब जैसे शङ्करजी ने संकर्षण भगवान् को स्तुति की है, उसका वर्णन मैं करूँगा, आप सब श्रद्धा सहित उसे श्रवण करें।

छप्पय

छिनभर शिव सत्सङ्ग पाइ हम अति बड़भागी।
रुद्रगीत हर दयो जलज पद हरि लौ लागी॥
जप तप सेवा सुकृत भये जो हम तैं स्वामी।
होहिं तुष्ट सरवेश आपु अज अन्तरयामी॥
शिव अज, सुर अरु असुर मनु, महिमा बरनत सब थकें।
तिनि प्रभु अशरन शरन की, इस्तुति हम का करि सकें॥

पद

प्रभो! तव महिमा पार न पायो।
शिव शारद चतुरानन थाके, सबने अकथ बतायो॥ १॥ प्र०
चारिहु वेद भेद नहिं पायो, नेति नेति कहि गायो।
शेष सहस मुख गाइँ निरन्तर, रस तिनकूँ यह भायो॥२॥ प्र०
सब कुछ करें प्रीति तुमरी हित, अब तक काल गँवायो।
अब तो कृपा करो करुनाकर, तुमरो दास कहायो॥३॥ प्र०
अतिथि अगिनि गुरु सेवा करि-करि, जो कुछ सुकृत कमायो।
होवै तव सन्तोष हेतु प्रभु, पद पंकज सिर नायो॥४॥ प्र०

प्रचेतसकृत भगवत् स्तुति

प्रचेतस ऊचुः

नमो नमः क्लेशविनाशनाय,
निरूपितोदारगुणाह्वयाय।
मनोवचोवेगपुरोजवाय,
सर्वाक्षमार्गैरगताध्वने नमः ॥१॥
शुद्धाय शान्ताय नमः स्वनिष्ठया,
मनस्यपार्थं विलसद्द्वयाय।
नमो जगत्स्थानलयोदयेषु,
गृहीतमायागुणविग्रहाय ॥२॥
नमो विशुद्धसत्त्वाय हरये हरिमेधसे।
वासुदेवाय कृष्णाय प्रभवे सर्वसात्वताम् ॥३॥
नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने।
नमः कमलपादाय नमस्ते कमलेक्षण ॥४॥
नमः कमलकिञ्जल्कपिशङ्गामलवाससे।
सर्वभूतनिवासाय नमोऽयुङ्क्ष्महि साक्षिणे ॥५॥
रूपं भगवता त्वेतदशेषक्लेशसंक्षयम्।
आविष्कृतं नः क्लिष्टानां किमन्यदनुकम्पितम् ॥६॥
एतावत्त्वं हि विभुभिर्भाव्यं दीनेषु वत्सलैः।

यदनुस्मर्यते काले स्वबुद्धयाभद्ररन्धन ॥७॥
येनोपशान्तिर्भूतानां क्षुल्लकानामपीहताम् ।
अन्तर्हितोऽन्तर्हृदये कस्मान्नो वेद नाशिषः ॥८॥
असावेव वरोऽस्माकमीप्सितो जगतः पते ।
प्रसन्नो भगवान् येषामपवर्गगुरुर्गतिः ॥९॥
वरं वृणीमहेऽथापि नाथ त्वत्परतः परात् ।
न ह्यन्तस्त्वद्विभूतीनां सोऽनन्त इति गीयसे ॥१०॥
पारिजातेऽञ्जसा लब्धे सारङ्गोऽन्यन्न सेवते ।
त्वदङ्घ्रिमूलमासाद्य साक्षात्किं किं वृणीमहि ॥११॥
यावत्ते मायया स्पृष्टा भ्रमाम इह कर्मभिः ।
तावद्भवत्प्रसङ्गानां सङ्गः स्यान्नो भवे भवे ॥१२॥
तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
भगवत्संगिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥१३॥
यत्रेड्यन्ते कथा मृष्टास्तृष्णायाः प्रशमो यतः ।
निर्वैरं यत्र भूतेषु नोद्वेगो यत्र कश्चन ॥१४॥
यत्र नारायणः साक्षाद्भगवान्न्यासिनां गतिः ।
संस्तूयते सत्कथासु मुक्तसङ्गैः पुनः पुनः ॥१५॥
तेषां विचरतां पद्भ्यां तीर्थानां पावनेच्छया ।
भीतस्य किं न रोचेत तावकानां समागमः ॥१६॥
वयं तु साक्षाद्भगवन् भवस्य,
विप्रस्य सख्युः क्षणसङ्गमेन ।

सुदुश्चिकित्स्यस्यभवस्य मृत्यो–
भिषक्तमं त्वाद्य गतिं गताः स्मः ॥१७॥
यन्नः स्वधीतं गुरवः प्रसादिता,
विप्राश्च वृद्धाश्च सदानुवृत्त्या।
आर्या नताः सुहृदो भ्रातरश्च,
सर्वाणि भूतान्यनसूतयैव ॥१८॥
यन्नः सुतप्तं तप एतदीश,
निरन्धसां कालमदभ्रमप्सु।
सर्वं तदेतत्पुरुषस्य भूम्नो,
वृणीमहे ते परितोषणाय ॥१९॥
मनुः स्वयम्भूर्भगवान् भवश्च,
येऽन्ये तपोज्ञानविशुद्धसत्त्वाः।
अदृष्टपारा अपि यन्महिम्नः,
स्तुवन्त्यथो त्वाऽऽत्मसमं गृणीमः ॥२०॥
नमः समाय शुद्धाय पुरुषाय पराय च।
वासुदेवाय सत्त्वाय तुभ्यं भगवते नमः ॥२१॥

भगवान् शङ्कर कृत-संकर्षण स्तुति

३२

भजे भजन्यारणपादपङ्कजम्,
भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणम् ।
भक्तेष्वलं भावितभूतभावनम्,
भवापहं त्वा भवभावमीश्वरम् ॥*
(श्रीभा० ५ स्क० १७ अ० १८ श्लो०)

छप्पय

खण्ड इलावृत एक पुरुष शिव सबइ नारी ।
जाइँ तहाँ यदि पुरुष बनें नारी सुकुमारी ॥
नारिनि तें घिरि रुद्र करें सङ्करषन इस्तुति ।
जय जय शुद्ध स्वरूप सहसफन तामस मूरति ॥
देहिँ अभक्तनि दण्ड नित, भक्तनि को भवभय हरें ।
विषय वासना रहित प्रभु, पदपद्मनि बन्दन करें ॥

इस भूमण्डल पर सात द्वीप हैं उनके नाम जम्बूद्वीप, लक्ष-द्वीप, शाल्मलिद्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीप

---

* सङ्कर्षण भगवान् की स्तुति करते हुए शङ्करजी कह रहे हैं—"हे भक्तभावन् भगवन् ! आपकी मैं वन्दना करता हूँ, आपके पादपंकज प्रपन्नों के पालक हैं, आप अखिल ऐश्वर्य के परमाश्रय हैं, आप भक्तों को भव-बन्धन से विमुक्त करने वाले हैं, अभक्तों को भवबन्धन में भ्रमाने वाले हैं तथा ईश्वर हैं ।"

हैं। ये सातों द्वीप क्रमशः क्षारसमुद्र, इक्षुसमुद्र, सुरासमुद्र, घृतसमुद्र, क्षीरसमुद्र, दधिसमुद्र, और शुद्धोदक समुद्रों से घिरे हुए हैं। क्षार समुद्र से घिरे जिस जम्बूद्वीप में हम लोग रहते हैं उसके नौ खण्ड हैं। जैसे कमल के बीच में एक तो कर्णिका रहता है और उसके आस पास पंखुड़ियाँ अथवा दल रहते हैं। इसी प्रकार इन वर्षों अथवा खण्डों में से इलावृत खण्ड तो बीच में है उसके आस पास नाभि (भारत) वर्ष, किंपुरुषवर्ष, हरिवर्ष, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, भद्राश्व और केतुमाल नाम के ये ८ खण्ड हैं। केवल भारतवर्ष या भरतखण्ड में ही कर्म करने वाले मनुष्य रहते हैं अन्य आठ खण्डों में स्वर्गसुख भोगकर आये हुए पुण्य भोगने वाले मनुष्य होते हैं, वे स्वतः कर्म करके आगे को सुकृत या दुष्कृत नहीं बना सकते फिर भी सब द्वीपों और सब खण्डों में अपनी-अपनी भावना के अनुसार भगवान् की पूजा अर्चा तो सभी लोग करते ही हैं। इन सब द्वीप और वर्षों में रहने वाले भगवान् की भिन्न-भिन्न मूर्तियों की पूजा स्तुति करते हैं। कोई किसी भी रूप की किसी भी नाम की पूजा करें, स्तुति करे वह पहुँचेगी सर्वान्तर्यामी भगवान् के ही पास। वे ही एकदेव नाना नामों से नाना रूपों से पूजे जाते हैं। सब द्वीप और वर्षों में भिन्न-भिन्न स्वभाववाले व्यक्ति निवास करते हैं। उनकी भावना के अनुसार उनके इष्ट भी भिन्न होते हैं। उस द्वीप या खण्ड के लोग अपने इष्टदेव की उसी मूर्ति की स्तुति करते रहते हैं।

इलावृतवर्ष के अधिष्ठातृदेव शङ्करजी हैं। वे पार्वती सहित उस वर्ष में निवास करते हैं। पहिले इस वर्ष में स्त्री पुरुष सब द्वीपों की भाँति रहते थे। एक दिवस पार्वतीजी शिवजी के साथ एकान्त विहार कर रही थीं। उसी समय कुछ ऋषिगण आगये। पार्वतीजी को बड़ी लज्जा लगी। उन्होंने शिवजी से यही वर माँगा

कि इस वर्ष में आपको छोड़कर दूसरा कोई पुरुष न रहे। सब स्त्रियाँ ही स्त्रियाँ रहें। तब से उस वर्ष में कोई पुरुष नहीं रहता। जो भूल से चला भी जाता है तो वह भी स्त्री बन जाता है। पूर्ण सामर्थ्यवान् शिवजी अकेले ही समस्त इलावृत खण्ड में स्त्रियों के साथ विहार करते रहते हैं। उस खण्ड में भगवान् की शुद्ध-तामसी मूर्ति जिसका नाम शेष या संकर्षण है उसकी आराधना होती है। शिवजी समस्त स्त्रियों से घिरे हुए भगवान् संकर्षण की स्तुति करते रहते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अब मैं जैसे इलावृत खण्ड में शङ्करजी भगवान् संकर्षण की जिस मन्त्र से स्तुति करते हैं उसका वर्णन आपसे करता हूँ।

भगवान् शङ्करजी पहिले तो अष्टाविंशति अक्षरात्मक मन्त्र का जप करते हैं तदनन्तर स्तुति करते हैं। मन्त्र का भावार्थ यह है—हे अनन्त! आप ओंकार रूप हैं। इस एकाक्षर मन्त्र का उच्चारण करके ही आपका स्मरण चिन्तन किया जाता है। ओंकार ब्रह्म का निर्देश है यही सम्पूर्ण वेदों का बीज है, यही आपका वाचक है। वाच्य वाचक की एकता के ही कारण आप प्रणवस्वरूप कहे जाते हैं। आपको नमस्कार है। आप षडैश्वर्य सम्पन्न हैं, समस्त ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य से परिपूर्ण हैं, इन सबके निधि आप ही हैं, आपसे ही समस्त ऐश्वर्य समस्त पराक्रम समस्त प्रसिद्धि और कीर्ति, समस्त शोभा, समस्त बोध और समस्त विरक्ति की उत्पत्ति हुई है। यह सृष्टि प्रकृति पुरुष के संयोग से हुई है। प्रकृति तो जड़ है, पुरुष का ही यह पसारा है, पुरुष ने ही इस प्रपञ्च का विस्तार किया है आप पुरुष से भी परे हैं अतः परम पुरुष कहलाते हैं। पुरुष से भी अत्युत्तम हैं अतः मनीषियों ने पुरुषोत्तम कहकर आपको सम्बो-

समझने लगता है, यह द्वैधी भाव ही भय का कारण है। इसी भय से भयभीत होकर हम भवाटवी में भटक रहे हैं। इस संसार का सम्बन्ध ही कुछ ऐसा है, जहाँ संसार की ओर दृष्टि का नहीं, तहाँ द्वैधीभाव आया नहीं, किन्तु हे अखिल जगत् नियन्ता ! हे मन्युजित ! आपकी दृष्टि यद्यपि संसार की ओर लगी है आप सबको देखते हैं, फिर भी मायिक विषयवासना रूप चित्त की वृत्तियों से आपको दृष्टि अणुमात्र भी विचलित नहीं होती। आप इनसे सदा सर्वदा निर्लिप्त बने रहते हैं। ऐसे आप नित्य निरञ्जन शुद्ध बुद्ध स्वरूप का ध्यान कौन नहीं करेगा ! अपने अन्तःकरण को वश में करने वाला ऐसा कौन सा व्यक्ति होगा जो आपका आदर न करेगा ? आपकी स्तुति न करेगा, और आपके पावन पादारविन्दों में पुनः पुनः प्रणाम न करेगा ?

हे संकर्षण स्वरूप सर्वेश्वर ! आपने सहस्रफण धारण करके तमोगुण का आश्रय लेकर यह विचित्र वेष बना रखा है। जो अज्ञानी पुरुष हैं, बोध रहित हैं वे तो आपको तामसीमूर्ति मानते हैं वे आपकी माया से मोहित होकर आपके यथार्थ स्वरूप को समझ नहीं सकते। वे जब मदिरापान के कारण अरुण वरण के आपके विशाल नयनों को निहारते हैं, तब वे आपको गुणातीत नहीं अनुभव करते। नागपत्नियाँ जब पूजा की सामग्री लेकर आपके पादपद्मों में पुष्पमालायें चढ़ाती हैं आपके श्रीअंग में सुगन्धित चन्दन लेप करती हैं, तब आपके गुलगुले सुकोमल अत्यन्त सुगन्धित सुचिक्कण चरणों के स्पर्श से उनके मन में स्थित मनसिज प्रकट होकर उनके चित्तों को चंचल बना देता है जिससे वे शेष पूजा करने में अपने को सर्वदा असमर्थ पाती हैं, वे आधीपूजा करके ही थकी सी, जकी सी, भूली सी, भटकी

सी देखती की देखती ही रह जाती हैं, ऐसे आपके पादपद्मों की पूजा करने की कामना कौन नहीं करेगा ?"

वेदों में जिसे स्रष्टा, पालक और संहर्ता कहा गया है, जिसे उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कारण कहा गया है, किन्तु वास्तव में जो इन तीनों से सर्वदा रहित हैं, जिन्हें सर्वज्ञ ऋषि मुनि अनन्त कहकर सम्बोधन करते हैं, कोई उन्हें शेष तथा सङ्कर्षण कहते हैं, कोई धरणीधर, अहिराज, और भूधर कहकर पुकारते हैं, जिनके सहस्रफणों पर यह सदनदी पर्वत चतुर्विधजीव, संकुलापृथ्वी सरसों के दाने के समान स्थित है, जिन्हें अपने मस्तक पर रखी पृथ्वी का उसी प्रकार पता भी नहीं रहता जिस प्रकार किसी की लम्बी जटाओं में एक दो लीक या जूँआ चिपटा हो, ऐसे अनन्त शक्तिधारी धरणीधर के पादपद्मों में हमारा बारम्बार नमस्कार है।

हे सर्वसमर्थ ! मुझे सब लोग संहार का स्वामी रुद्र कहते हैं। मैं त्रिविध अहंकार से देवता, इन्द्रिय और भूतों की रचना करता हूँ सृष्टि के आदि में एक महान् वस्तु उत्पन्न होती है जिसे ऋषि मुनि महत्तत्व के नाम से सम्बोधन करते हैं, उस महत्तत्व नामक प्रथमगुण के जगत् स्रष्टा ब्रह्माजी अधिष्ठातृदेव हैं उसका साक्षात् स्वरूप हैं, ऐसे आप सर्वेश्वर को बारम्बार प्रणाम करते हैं।

हे प्रभो ! कर्ताकरण सब आप ही हो। आप ही सबको बनाते हैं। परदे के भीतर बैठा बैठा नट जैसे कठपुतलियों को नचाता रहता है, उसी प्रकार आप ही ब्रह्माको, विष्णुको, तथा मुझे नचा रहे हो। सर्वप्रथम महत्तत्व की उत्पत्ति होती है, उससे

अहंकार, फिर इन्द्रियाभिमानी देवगण, तब समस्त इन्द्रियाँ, फिर पञ्चभूत उत्पन्न होते हैं। उन्हीं से इस सम्पूर्ण जगत् का विस्तार है। देवतागण अपना अपना कार्य करने लगते हैं, किन्तु हम सब भी कार्य करने में स्वतन्त्र नहीं। जैसे डाली पर बैठा पक्षी अपने स्वामी के संकेत से ही सब कार्यों को करता है। अज्ञ दर्शक जो उसका रहस्य नहीं समझते वे सोचते हैं, यह पक्षी स्वतन्त्र रूप से ये सब क्रियायें कर रहा है, इससे दूर पर जो पुरुष बैठा है वह तटस्थ है साक्षीमात्र है, किन्तु उस पक्षी के पैर जो अत्यन्त पतली एक डोरी से बँधी है, उसका छोर तो उसी के हाथ में है। पक्षी तो उसी के संकेत से सब कुछ कर रहा है इसी प्रकार हे जगदाधार! हम समस्त देवतागण आपकी ही कृपा कटाक्ष से इस जगत् की उत्पत्ति स्थिति और संहार के कार्य को करते हैं। ऐसे सर्वसमर्थ सर्वेश्वर को हमारा बारम्बार प्रणाम है।

हे भक्तवत्सल! आपकी रची हुई यह मोहिनीमाया ऐसी दुस्तर है, इसमें आपने ऐसी विलक्षण कर्ममयी ग्रन्थियाँ लगा दी हैं, कि सत्वादिगुणों की सृष्टि से मोहित हुआ यह अज्ञ जीव न तो इस माया के यथार्थ रूप को ही जान सकता है और न इस कर्मरूप ग्रंथियों से युक्त मोहिनीमाया से सुगमतापूर्वक मुक्त होने के उपाय को ही जानता है। माया के चक्कर में फँसा हुआ इधर से उधर भटक रहा है, कुछ से कुछ कर रहा है, इसे अपने श्रेय का प्रशस्त पथ दिखायी नहीं देता। जब तक जीव माया की ओर देखता रहेगा, तब तक इसका निस्तार नहीं

कल्याण नहीं, मङ्गल नहीं, सुख नहीं, शान्ति नहीं, परमानन्द नहीं। जब माया की ओर पीठ करके जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारण रूप आपकी ओर देखेगा तभी इसका निस्तार सम्भव है। हे देवाधिदेव ! हे सङ्कर्षण ! हे धरणीधर ! हे सहस्रफण सर्वेश्वर ! आपके पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार इलावृत्त खण्ड में स्थित वहाँ की समस्त स्त्रियों से घिरे हुए शङ्करजी सङ्कर्षण भगवान् की जिस प्रकार निरन्तर स्तुति करते रहते हैं उसका अत्यन्त संक्षेप में मैंने आपके सम्मुख वर्णन किया अब जिस प्रकार भद्राश्वखण्ड में धर्मपुत्र भद्रश्रवा हयग्रीव भगवान् की स्तुति करते हैं, उसका वर्णन मैं आगे करूँगा, आप सब इस प्रसङ्ग को श्रद्धा भक्ति सहित श्रवण करने की कृपा करें।"

छप्पय

माया मोहित मनुज मत्त मदिरा में मानें।
अरुननयन मृदुचरन निरखि गुनवश जिनिजानें॥
नागनारि पद परसि कामवश जड़ बनि जावें।
जो सङ्करषन शेष धरनिधर अहि कहलावें॥
सरसों समसिर भू धरे, जग करता निष्काम हैं।
उन सङ्करषन चरन महँ, बारम्बार प्रनाम हैं॥

पद

बन्दौं सङ्करषन पदपदुमनि।
सकल गुननि के स्वामी साक्षी, करें कृतारथ नयननि ॥१॥ब०
भक्त भरन तव चरन परमधन, भवभय मेटो भक्तनि।
सरव समर्थ ईश अखिलेश्वर, करो सुखी सब जीवनि ॥२॥ब०
अरुन बरन मदमाते चञ्चल, निरखें नारी नयननि।
सुधि बुधि भूलि बावरी बनिकें, पूजें पुनि पुनि चरननि ॥३॥ब०
सहस सिरनि पै सरसों सम भू, धारें सबई भूतनि।
सन्त अनन्त निरन्तर भाखें, करें प्रकट गुनरूपनि ॥४॥ ब०
पग में बँधी डोरि तें खगज्यों, नाचै प्रभु संकेतनि।
त्यों ये जीव त्रिदेव करें सब, जगके सबई काजनि ॥५॥ब०
जग उत्पादक पालक रक्षक, शेष सकल सुख सदमनि।
करें बन्दना बार बार प्रभु, छिमा करें अपराधनि ॥६॥ब०

भवकृत संकर्षण स्तुति

श्रीभगवानुवाच

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसंख्यानाय,
अनन्तायाव्यक्ताय नम इति ॥१॥

भजे भजन्यारणपादपङ्कजं,
भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणम् ।
भक्तेष्वलं भावितभूतभावनं,
भवापहं त्वा भवभावमीश्वरम् ॥२॥

न यस्य मायागुणचित्तवृत्तिभिः,
निरीक्षतोह्यण्वपि दृष्टिरज्यते ।
ईशे यथा नोऽजितमन्युरंहसां,
कस्तं न मन्येत जिगीषुरात्मनः ॥३॥

असद्दृशो यः प्रतिभाति मायया,
क्षीवेव मध्वासवताम्रलोचनः ।
न नागवध्वोऽर्हण ईशिरे ह्रिया,
यत्पादयोः स्पर्शनधर्षितेन्द्रियाः ॥४॥

यमाहुरस्य स्थितिजन्मसंयमं,
त्रिभिर्विहीनं यमनन्तमृषयः ।

न वेद सिद्धार्थमिव क्वचित्स्थितं,
भूमण्डलं मूर्धसहस्रधामसु ॥५॥
यस्याद्य आसीद् गुणविग्रहो महान्,
विज्ञानधिष्ण्यो भगवानजः किल।
यत्सम्भवोऽहं त्रिवृता स्वतेजसा,
वैकारिकं तामसमैन्द्रियं सृजे ॥६॥
एते वयं यस्य वशे महात्मनः,
स्थिताः शकुन्ता इव सूत्रयन्त्रिताः।
महानहं वैकृततामसेन्द्रियाः,
सृजाम सर्वे यदनुग्रहादिदम् ॥७॥
यन्निर्मितां कर्ह्यपि कर्मपर्वणीं,
मायां जनोऽयं गुणसर्गमोहितः।
न वेद निस्तारणयोगमञ्जसा,
तस्मै नमस्ते विलयोदयात्मने ॥८॥

भद्रश्रवाकृत हयग्रीव स्तुति

(३३)

अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितम्,
घ्नन्तं जनोऽयं हि मिषन्न पश्यति ।
ध्यायन्नसद्यर्हि विकर्म सेवितुम्,
निर्हृत्य पुत्रं पितरं जिजीविषति ॥
(श्रीभा० ५ स्क० १८ अ० ३ श्लो०)

छप्पय

सुखद खण्ड भद्राश्व धरमसुत भद्र श्रवाज हूँ ।
हयग्रीव हरि इष्ट करें ईस्तुति मिलि सब तहँ ॥
धरम रूप हरि नमः करें मन पावन पावन ।
लीला रचें विचित्र मोहिनी अति मन भावन ॥
कहैं असत् जग वेद विद्, ज्ञानी अनुभव हू करें ।
मोहमयी माया मधुर, पुनि पुनि नरभव जल परें ॥

जम्बूद्वीप के नौ खण्डों में से एक भद्राश्व खण्ड है,

* हयग्रीव भगवान् की स्तुति करते हुए भद्रश्रवा कह रहे हैं—"अहो, देखो तो सही भगवान् की माया कैसी विचित्र है जिससे यह मानव कालको नित्य ही सबका संहार करते हुए देखकर भी अन्धा बना हुआ है, असत् विषयों को भोगने के लिये इन अतितुच्छ वस्तुओं का निरन्तर चिन्तन करता है । पिता पुत्र का दाहकर्म करके भी स्वयं सदा जीवित ही रहना चाहता है । कैसी अद्भुत लीला है ।"

उसमें धर्म के पुत्र भद्रश्रवा राज्य करते हैं। उस खण्ड के इष्ट भगवान् हयग्रीव हैं। भद्रश्रवागण अपने सेवकों के सहित हयग्रीव भगवान् के मन्त्र को जपते हुए उनकी स्तुति किया करते हैं।

नैमिषारण्य निवासी ऋषियों से सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! भद्रश्रवागण जिस मन्त्र का जप करते हैं, उसका भावार्थ यह है—"हे प्रभो! यह मन जन्मान्तरों के संस्कारों से मलिन बन गया है, इसका स्वाभाविक झुकाव विषय भोगों की ही ओर हो गया है। अधर्म करने का इसका स्वभाव बन गया है, इस मनको विशुद्ध बनाने का सरल सुगम सहज एक ही उपाय है, कि धर्म रूप जो आप हैं, आपकी शरण में यह प्राणी जाय। चित्तको विशुद्ध बनाने का धर्म के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय ही नहीं। धर्म कोई अन्य नहीं है, धर्मरूप भी आपने ही धारण किया है, आप सम्पूर्ण जगत् को धारण किये हुए हैं, इसीलिये धर्म कहलाते हैं, ऐसे धर्मरूप साक्षात् भगवान् को बारम्बार नमस्कार है।

सूतजी कह रहे हैं—"इस प्रकार मन्त्र जपकर परम समाधि द्वारा हयग्रीव भगवान् की मङ्गलमयी मूर्ति को हृदय में धारण करके स्तुति करते हुए वे कहते हैं—"हे प्रभो! आपकी लीला बड़ी ही विचित्र है अपरम्पार है कोई प्राणी इसका पार पाना चाहे तो पारही पा नहीं सकता। आपकी माया ऐसी मोहिनी है ऐसी ठगिनी है, कि आँख के सम्मुख से चोर वस्तु उठा ले जाता है, फिर भी प्राणी शिक्षा नहीं लेता कि अब तो सावधान हो जाते। फिर वही सामने वस्तु रखता है, फिर चोर आता है, देखते देखते उठा ले जाता है। कैसा सम्मोहन मन्त्र है, कैसा विचित्र खेल है कैसा अद्भुत नाटक है।

प्रभो ! हाड़ मांस के बने इस शरीर में प्राणियों का कितना मोह हो गया है। इसीको ये अजर अमर माने बैठे हैं। मानकर बैठे ही नहीं है, इसे सुखी बनाने का इसे सदा स्वस्थ और सुन्दर बनानेका सतत प्रयत्न करते ही रहते हैं। यह जानते भी हैं, इसमें कितना भी तेल फुलेल लगाओ, कितने ही चन्दन और अन्य सुगन्धित द्रव्यों से इसे स्नान कराओ, यह रहेगा मल मूत्रका थैला ही इसे कितना ही दूध दही पिलाओ, कितने ही मूल्यवान् से मूल्यवान् रसायनिक द्रव्य खिलाओ यह अविनाशी कभी बन नहीं सकता। एक दिन इसका नाश अवश्य होगा और चाहे कोई भूलकर भी जाय किन्तु काल कभी भूल करता नहीं, वह किसी पर दया दिखाता नहीं, किसी को छोड़ता नहीं। सभी का संहार कर डालता है सभी को अपनी दाढ़ों के नीचे पीस देता है, सभी को निगल जाता है। हे काल के भी काल प्रभो ! यह भी बात नहीं कि काल लुक छिपकर आता है, एकान्त अरण्य में चुपके से उठा ले जाता है, सबके देखते देखते, पिता, पुत्र, भाई, बन्धु, माता, स्त्री, बहिन बेटी सबके सामने से सबके बीच से आकर उठा ले जाता है एक दिनकी बात नहीं नित्य ही होता है, फिर भी प्राणी चेतता नहीं। आँखों के रहते अन्धा बना हुआ है। कानों के रहते सुनता नहीं। यह जानता है, मेरे पिता-मह प्रपितामह, वृद्धप्रपितामह उनके भी पिता पितामह इन्हीं घरों में रहे, इन्हीं वाहनों पर चढ़े, इसी भूमि में ममत्व किया इन्हीं भोगों के भोगने में लालायित बने रहे, किन्तु न जाने वे अब कहाँ चले गये। जब ये विषय भोग उनको तृप्त नहीं कर सके तो हमें तृप्त क्या करेंगे। किन्तु यह मोटी बुद्धि से भी समझी जाने वाली बात अन्तःकरण में बैठती

नहीं। औरों की बात छोड़ो। अपने पिताका तो दाह संस्कार हमारे ही आगे हुआ। जिस धन से वे अतृप्त रहे उन्हींके उत्तराधिकारी बनकर उस धनसे हम तृप्त कैसे बन सकते हैं। जब वे मर गये तो हम सदा जीवित कैसे बने रह सकते हैं, जिन तत्वोंका पिताका शरीर था, उन्हीं तत्वों से हमारा भी शरीर बना है। पिताजी भी काल बलीके चक्कर से नहीं बच सके, उनके भी पिता काल कवलित हुए, न जाने यह काल कबसे हमारी पीढ़ियों का संहार करता हुआ चला आ रहा है। हम पर यह दया दिखादेगा ऐसी आशा नहीं फिर भी हम दिन रात्रि विषयसामग्रियों के जुटाने में ही व्यग्र बने रहते हैं। यह भी बात नहीं कि काल हमारे पिता पितामहों को ही मार कर अपना कार्य समाप्त कर देगा आगे की पीढ़ियों पर संभव है यह दया दिखादे। सो भी बात नहीं। पिता के सम्मुख ही युवा पुत्र मर जाता है, बूढ़ा पिता स्मशान में जाकर पुत्र को जला आता है, फिर भी आकर भोगोंको भोगने की इच्छा करता है, उससे शिक्षा ग्रहण नहीं करता कि जब मेरे सामने ही मर गया, एक दिन मुझे भी मरना है, फिर इन नाशवान् विषय भोगों के भोगने के लिये असत् पदार्थों का चिंतन क्यों करूँ, उस अविनाशी का सतत स्मरण करूँ किन्तु ऐसा सूझता ही नहीं। स्मशान में कुछ क्षण को वैराग्य होता है, जहाँ दाहसंस्कार सम्पन्न हुआ, जहाँ घर आये कि फिर आहार निद्रा मैथुन की सूझती है, फिर विषयों की लालसा बलवती बन जाती है, कैसी है आपकी यह जगन्मोहिनी माया, कैसी है आपकी यह लावण्यविहीना लीला। पिता पुत्रको फूंककर भी स्वयं सदा जीवित रहने की इच्छा रखता है।

हे देवाधिदेव ! हे ज्ञान स्वरूप ! हे जन्म मरण से रहित प्रभो ! बड़े बड़े वेदज्ञ विद्वान भरी सभाओं में व्याख्यान देते हैं, नाना युक्तियों से नाना प्रमाण और दृष्टान्तों से यह समझाते हैं कि यह जगत् नाशवान् है, अनित्य है, अशाश्वत है, क्षणभंगुर है। यह बात नहीं कि यह केवल कल्पना मात्र ही हो, पोथियों में ही लिखा पढ़ा सिद्धान्त हो। विलक्षण बुद्धि वाले तत्वदर्शी ऋषि मुनियों आत्मज्ञानियों ने इस विषय को प्रत्यक्ष किया है, उन्होंने ब्रह्म साक्षात्कार करके इस सिद्धान्त को स्वानुभूति में स्थिर किया है। इतना सब कुछ होने पर भी लोग आपकी माया में मोहित हो ही जाते हैं, आखों के सम्मुख प्रत्यक्ष कूप देखते हुए भी उसमें गिर ही जाते हैं, यही आपकी मोहिनी माया की विशेषता है। यह कितना अत्यन्त विस्मय कारक कार्य है। ऐसे विस्मय कारक अद्भुत कृत्यको करने वाले आप नटनागर के पादपद्मों में हमारा पुनः पुनः प्रणाम है।

हे कार्य कारण से रहित ! हे परम पुरुष परमात्मन् ! आप के आगे पीछे अगल बगल कहीं भी कोई भी कैसा भी आवरण नहीं, आप निरावरण हैं, आवरण शून्य हैं, फिर भी वेदशास्त्रों में आपको ही जगत् का कर्ता पालक तथा संहर्ता कहा गया है। यह तो विचित्र बात है। जो गुणों के कार्यों से सर्वथा रहित है, वह गुणमयी सृष्टि कैसे कर सकता है, कैसे उसकी रक्षा में प्रयास कर सकता है और फिर उस अपने ही रचे हुए के संहाररूपी क्रूरकार्य को कैसे कर सकता है ? किन्तु आप मायेश के लिये यह कुछ असंभव नहीं। आपकी माया ऐसी विचित्र है कि उसमें असंभव नामकी कोई वस्तु है ही नहीं। आपकी अद्भुत अलौकिक माया में सभी कुछ संभव है यों देखा जाय तो जो भी दृश्य अदृश्य कार्यवर्ग है,

इसके एकमात्र कारण तो आप ही हैं। आप सर्वात्मा हैं, सर्व समर्थ हैं, कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं हैं, अपनी ही रचित माया से आप विविध रूप बनाकर उत्पत्ति, स्थिति और लय सम्बन्धी क्रीड़ायें किया करते हैं। वास्तविक बात तो यह है कि आप अपने माया रहित विशुद्ध स्वरूप से इन जगत् कार्यों से सर्वथा पृथक् हैं। आपसे इन कार्यों का कोई सम्बन्ध नहीं, लगाव नहीं, लपेट नहीं।

हे सर्वसमर्थ ! प्रलयकाल में जब तमोगुण प्रधान मधु और कैटभ नाम दो अनादि असुर वेदों को चुराकर रसातल चले गये थे, उस समय उनके वरदानों को सत्य करने के लिये आपने आधा मनुष्य और आधा अश्व का रूप धारण किया था। आप हयग्रीव बनकर रसातल में गये और उन पराक्रमी दैत्यों से वेदों का उद्धार कर लाये। ब्रह्माजी की प्रार्थना पर आपने रसातल से वेदों को लाकर उन्हें दे दिया। ऐसे अमोघ वीर्य वाले आप हयग्रीव भगवान् के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार मैंने भद्रश्रवाओं द्वारा की हुई हयग्रीव भगवान् की स्तुति कही, अब हरिवर्ष में भक्तवर प्रह्लादजी अपने अनुयायियों सहित वहाँ के इष्टदेव नृसिंह भगवान् की जैसे स्तुति करते हैं उस कथा प्रसङ्ग को मैं आगे कहूँगा। उसे आप श्रद्धा से सुनें।

छप्पय

जगको कारन देव ! कहें बुधकूँ विज्ञानी।
कारज कारन भूत आपु सब गुनके खानी॥
मायाको यह खेल आपु तो नित्य निरञ्जन।
क्रीड़ाहित धरि देह करैं भक्तनि भवभञ्जन॥
मधुकैटभ तैं वेद जिनि, लाइ रसातल तैं अजहिं।
दीये, तिनि हयग्रीव हम, बार बार वन्दन करहिं॥

पद

नर हय ! रूप विचित्र बनायौ।
हीं मनुज नहिं, अश्व अखिलपति, ग्रीवा हय धड़ लायौ॥१॥
लयकाल महँ मधुकैटभ खल, चतुरानन डरपायौ।
द चुराय रसातल भागे, तब बाबा घबरायौ॥२॥
द उधारन ऋषि मुनि पालन, हरि औतार धरायौ।
लय पयोधि प्रविसि प्रभु पालक, पामर पकरि गिरायौ॥३॥
ाइ वेद ब्रह्माकूँ दीन्हें, सुर मुनि ऋषि गुन गायौ।
भु परमेश परावर पुनि पुनि, पद पदुमनि सिरनायौ॥४॥

भद्रश्रवसकृत-हयग्रीव स्तुति

भद्रश्रवसऊचुः

ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नम इति ॥१॥

अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितं,
घ्नन्तं जनोऽयं हि मिषन्न पश्यति ।
ध्यायन्नसद्यर्हि विकर्म सेवितुं,
निर्हृत्य पुत्रं पितरं जिजीविषति ॥२॥

वदन्ति विश्वं कवयः स्म नश्वरं,
पश्यन्ति चाध्यात्मविदो विपश्चितः ।
तथापि मुह्यन्ति तवाज मायया,
सुविस्मितं कृत्यमजं नतोऽस्मि तम् ॥३॥

विश्वोद्भवस्थाननिरोधकर्म ते,
ह्यकर्तुरंगीकृतमप्यपावृतः ।
युक्तं न चित्रं त्वयि कार्यकारणे,
सर्वात्मनि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः ॥४॥

वेदान् युगान्ते तमसा तिरस्कृतान्,
रसातलाद्यो नृतुरंगविग्रहः ।
प्रत्याददे वै कवयेऽभियाचते,
तस्मै नमस्तेऽवितथेहिताय इति ॥५॥

प्रहलादजी कृत नृसिंह स्तुति

(३४)

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदताम्,
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथोधिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षज,
आवेशयतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥*
(श्रीभा० ५ स्क० १८ अ० ९ श्लो०)

छप्पय

असुर अधिप प्रहलाद खण्ड हरि वरष विराजें।
हरि धरि नरहरि रूप इष्ट असुरनि बनि भ्राजें॥
इस्तुति श्रीप्रहलाद करें जय जग में होवें।
होवें सब अति मुदित सकल खलता खल खोवें॥
नहिँ होवै आसक्ति प्रभु, धन, जन, घर, परिवार में।
सत्संगति हरि चरन रति, मिलै सतत संसार में॥

नव खण्डों में से एक हरिवर्ष खण्ड है। उस खण्ड के इष्टदेव भगवान् नृसिंहजी हैं, जो प्रह्लाद पर कृपा करनेके निमित्त खम्भ से

---

* नृसिंह भगवान् की स्तुति करते हुए प्रह्लादजी कह रहे हैं—"हे प्रभो! विश्व का मंगल हो, दुष्ट लोग प्रसन्न हों, सभी प्राणी परस्पर में हिल मिलकर एक दूसरेकी कल्याण कामना करें, हमारा मन सदा कल्याण कारी विचारों का ही चिन्तन करे और हमारी अहैतुकी बुद्धि अधोक्षज भगवान् की ओर लगे।"

अवतीर्ण हुए थे, जिन्होंने हिरण्यकशिपु मारकर प्रह्लादजी को दैत्य दानव तथा असुरों का राजा बनाया था। प्रह्लादजी एक रूप से इस वर्ष में भी निवास करते हैं और इस खंड के निवासियों के सहित भगवान् नृसिंह की स्तुति करते रहते हैं। पहिले वे मन्त्र जाप करते हैं तदनन्तर स्तुति करते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! हरिवर्ष में प्रह्लादजी अपने साथियों के सहित जिस मन्त्र का जप करते हैं पहिले उसी का भावार्थ कहते हैं प्रह्लाद कहते हैं—"ओंकार स्वरूप भगवान् नृसिंहदेव को नमस्कार है। प्रभो ! संसार में, अग्निमें, सूर्यमें, तथा जल में जो भी तेज है, वे सभी आपके तेज के ही कारण तेजस्वी बने हुए हैं, समस्त तेजों के पुञ्जीभूत तेज, समस्त तेजों के आदि स्थान तथा सभी तेजों की खानि आप ही हैं। आपके बिना सूर्य चन्द्र तथा अग्नि के तेज का अस्तित्व ही नहीं। अतः हे तेजरूप ! अपने तेज से हमारी भोगवासनाओं को—कर्मवासनाओं को भस्म करो। आपके नख वज्र के समान सुदृढ़ और तेजस्वी हैं, उनमें से तेज की किरणें निकलती रहती हैं। अतः हे वज्रनख ! उन तीक्ष्ण तेजस्वी सुदृढ़ नखों से हमारी कर्मवासनाओं को जला दो। नखों के ही समान आपकी दाढ़ें भी सुदृढ़ और कठिन से कठिन वस्तुओं को चबा जाने में समर्थ हैं। हमारे हृदय में अज्ञान ने दृढ़तापूर्वक परत लगा रखे हैं। यह अज्ञान इतना कठिनतम बन गया है, कि हटाये हटता ही नहीं। आप अपनी तीक्ष्ण दाढ़ों से हमारे अज्ञान रूप तम को निगल जाओ, चबा जाओ। हे ओंकार स्वरूप ! आप स्वाहा रूप भी हैं। हमें निर्भय बना दो। निर्भयता मिल जाय अभय प्राप्त हो। ॐ ह्रौम्।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! इस मन्त्र के अनन्तर प्रह्लाद जी स्तुति करते हुए कहते हैं—"हे प्रभो ! आज सम्पूर्ण जगत् अकल्याण की ही ओर बढ़ रहा है, विकर्मों में प्राणी निरत होरहे हैं ये सब शुभ कर्म करने लगें। स्वामिन् ! मुझे सबसे अधिक दया के पात्र दुष्ट पुरुष ही लगते हैं। हे प्राणेश ! पतिव्रता पत्नी तो अपने प्राणेश के शव के साथ एक ही दिन चिता पर जलती है, किन्तु ये दुष्ट पुरुष जिनसे अपना कोई भी सम्बन्ध नहीं उनके लिये जीवन ही बिना चिता के–बिना अग्नि के–निरन्तर जलते रहते हैं। दूसरों का अभ्युदय देखते ही इनका हृदय जलने लगता है फुँकने लगता है, दहकने लगता है, इनको कभी सुख नहीं, शान्ति नहीं, प्रसन्नता नहीं। हे शान्ति स्वरूप सर्वेश ! दुष्ट अपनी दुष्टता का परित्याग करके क्रूर अपनी कुटिलता क्रूरता को छोड़कर प्रसन्न हों, मुदित शान्त हों। मानवप्राणी में यही एक बड़ा भारी दोष है, यह दूसरों से ईर्ष्या करता है, अन्यों की उन्नति से उत्साहित नहीं होता, एक ही कार्य करने वाले परस्पर में हिल मिलकर नहीं रहते। एक दूसरे के प्रति सभी सहानुभूति नहीं रखते। स्वामिन् ! आप सबकी बुद्धि में ऐसी प्रेरणा करें कि सभी प्राणियों में सद्भावना हो, सब जीव अपने अन्तःकरण से परस्पर में एक दूसरे का हित चिन्तन करें। सबके सुख दुख को अपने ही सुख दुख के समान समझें। विश्व कल्याण की भावना हमारे हृदय में उत्पन्न हुआ करे। हमारा मन कभी असत् चिन्तन न करे, [illegible] विचारें। अशिव संकल्प उठें ही नहीं, हमारी इन्द्रियाँ [illegible] सर्वदा शुभ मार्ग में प्रवृत्त हों। [illegible] हों। हमारी बुद्धि काम्यकर्मों में [illegible] फल की कामना के बिना हम कोई [illegible] नहीं [illegible]

लिये हम सुखी दुखी रहते हैं, हे सर्वसमर्थ ! आप ऐसी कृपा करें कि हमारी बुद्धि अहैतुकी हो जावे। हम निष्कामभाव से आप अधोक्षज भगवान् से प्रेम करने लगें। हमारी अहैतुकी मति आप में आवेशित हो जाय।

हे प्रभो ! हम सभी संसारी प्राणी आसक्ति के कारण ही दीन दुखी बने रहते हैं। यह घर हमने बनाया है इस पर कोई दूसरा अधिकार न जमा ले। यह टूट फूट न जाय सुन्दर बन जाय, और अधिक बढ़ जाय। यह स्त्री हमारी है इस पर सबसे अधिक वस्त्राभूषण हों, और चाहे जिसे कष्ट हो इसे कष्ट न होने पावे। पुत्र पुत्रियों के पालन पोषण के लिये पाप भी करना पड़े तो कोई हानि नहीं, नाना प्रकार दम्भ करके छल कपट के कार्यों से परिवार का पालन करते हैं। धन के लिये पापाचार, अनाचार, पाखण्ड तथा नीच कर्म करते हैं। ये सब कार्य अत्यधिक आसक्ति के वशीभूत होकर ही किये जाते हैं, हे सर्व प्रिय! घर, द्वार, स्त्री, परिवार, पुत्र बन्धु बान्धव तथा धन सम्पति में हमारी आसक्ति न हो। आसक्ति के बिना कोई रह नहीं सकता, यह संसार, यह शरीर सभी आसक्ति के ही कारण चल रहे हैं यदि यही बात है आसक्ति होना आवश्यक ही हो, तो हमारी आसक्ति आपके अनन्य अनुचरों में हो, भगवत् भक्तों में हो। आपके सच्चे सेवकों में ही अनुराग हो। जो खल हैं, इन्द्रिय लोलुप हैं, संसारी भोगों के पीछे पड़े रहते हैं, उनमें प्रेम करने से संसार बन्धन दृढ़ होता है, किन्तु जो भोगों से विरक्त हैं, यथालाभ सन्तुष्ट हैं, शरीर निर्वाह के योग्य अशन वसन को ही पर्याप्त मानकर प्रसन्न होते हैं, उन्हें अल्पकाल में ही सिद्धि लाभ हो जाती है। वे अपने सन्तोष के द्वारा, अपरिग्रह के प्रभाव से प्रभु के परमप्रिय पात्र बन जाते हैं, किन्तु जो संग्रही हैं, असन्तोषी

हैं, तृष्णा से आकुल चित्त वाले हैं, जो भोग सामग्रियों का अधिकाधिक संग्रह करने में ही निमग्न रहते हैं तथा इन्द्रिय लोलुप हैं, उन्हें सिद्धि प्राप्त नहीं होती वे तो इन्द्रियों के अधीन होकर भवाटवी में भटकते रहते हैं।

स्वामिन्! हमें सर्वदा भगवत् भक्तों का प्रभु के प्यारे अनुचरों का—ही सङ्ग मिले। भगवत् भक्तों के यहाँ नित्य नियम से भागवती कथाओं का पठन पाठन श्रवण मनन होता रहता है, भगवत् भक्तों की प्रभो! यही सबसे बड़ी पहिचान है। जिनके यहाँ लोक वार्तायें हों वे सामान्य जन हैं, जिनके यहाँ दूसरों की आलोचना प्रत्यालोचना हों, सज्जन पुरुषों की निन्दा हो वे असन्त हैं जिनके यहाँ निरन्तर भगवत चर्चा का ही प्रवाह बहता रहे वे ही सन्त हैं। उनके यहाँ भगवत कथा कीर्तन रूप भागीरथी हिलोरें मारती रहती हैं उसमें जाकर सन्तों के साथ जो नहाते हैं, अवगाहन करते हैं, दरस परस मज्जन और पान करते हैं, उनके समस्त कल्मष कट जाते हैं, सभी पाप ताप धुल जाते हैं हे प्रभो! आपका उदार चरित रूप अमृत कर्णों के छिद्रों द्वारा जब हृदय कमल की कर्णिका को सावित कर देता है, तब आप अज उस हृदय में जमी काई को, सम्पूर्ण अशुभों को, तन मनके समस्त मल का मार्जन कर देते हैं इसीलिये हमें और कुछ नहीं चाहिये। हमें तो केवल कथा रस रसिक भगवत भक्तों की सन्निधि की आकांक्षा के भक्तिभाव में भावित अनन्य उपासकों की सङ्गति की अभिलाषा है। हमारा प्रारब्ध, हमारा भाग्य हमारी कर्मवासनायें हमें नाना योनियों में प्रारब्धानुसार भोग भुगाती रहे, स्वरग में, नरक में तथा भूलोक में नाना शरीर धारण करके सुख दुख का अनुभव कराती रहें, किन्तु हमें वरदान दीजिये कि हम जहाँ जहाँ जनमें तहाँ तहाँ हमें सत्सङ्ग

की प्राप्ति हो, सदा साधुओं का सङ्ग मिले। सन्त समागम से हम कभी भी वञ्चित न रहें। आपके भावुक भक्तों का सङ्ग हमें सर्वत्र सर्व योनियों में सर्वकाल प्राप्त होता रहे।

हे सन्तों के सर्वस्व स्वामिन्! यदि हमें सत्सङ्ग का सुख सर्वत्र प्राप्त हो जाय, तो फिर हम न कभी स्वर्ग सुखों की इच्छा करेंगे, न मुक्ति की ही अभिलाषा करेंगे। नित्य निरन्तर सन्त समागम प्राप्त हो सके तब तो कहना ही क्या? हम तो कहते हैं जितनी देर में पलक गिरता है, उससे भी अत्यन्त सूक्ष्म लवमात्र समय भी सत्सङ्ग प्राप्त हो जाय, तो वह सभी सुखों से सर्वश्रेष्ठ है अतः स्वामिन्! हम आपसे सन्त समागम का ही एकमात्र वरदान माँगते हैं प्रभो! हमारे चाहें सहस्रों जन्म हों, किन्तु हम सत्सङ्ग से विमुख न रहें, हमें आपके अनन्य भक्तों का सान्निध्य प्राप्त होता ही रहे।

हे भक्तवांछाकल्पतरु! आप तो बहुधन्धी हैं। आप कभी किसी का ध्यान करते हैं कभी किसी की सार सम्हाल करते हैं। कभी कहीं जाते हैं कभी कहीं लेट लगाते हैं। आप सबको सर्वत्र सुलभ नहीं, किन्तु जगत् को पवित्र करने वाली आपकी परम पावन कथायें तो चाहने वालों को सर्वत्र सुलभ हैं, उनको क्षणमात्र भी यदि कोई श्रद्धा सहित श्रवण करे, तो उसकी समस्त भोगवासनायें सम्पूर्ण विषय तृष्णायें शान्त हो जाती हैं। ऐसी भागवती कथायें भगवत् भक्त साधुओं के यहाँ नित्य ही नियम से होती हैं, क्योंकि उन अनन्य उपासक सन्तों के एकमात्र आधार और उपास्य आप ही हैं। आपकी विश्वविमोहिनी सुख शान्ति प्रदायिनी कथाएँ जहाँ होती हैं, वह स्थल परमपावन तीर्थ बन जाता है। तीर्थ में निवास करने वाले श्रद्धालुरसिक

सहृदय और भावुक बन जाते हैं, वे सम्पूर्ण भूतों में आपको ही देखते हैं। जो सबमें आपका ही दर्शन करते हैं वे ही अनन्य अहैतुक भक्त हैं, जिनकी प्रभुपादारविन्दों में निःस्वार्थ भक्ति होती है, उनके समीप समस्त सद्गुण उसी प्रकार आकर एकत्रित हो जाते हैं, जैसे नीची भूमि के गड्ढे में चारों ओर का जल आकर एकत्रित हो जाता है, अथवा मीठे को देखकर उसमें मक्खियाँ चींटियाँ अपने आप आ जाती हैं, अथवा कमल के खिलने पर भौंरे अपने आप उसके चारों ओर मँडराने लगते हैं, अथवा रानी के आते ही उसकी सेविकायें तथा सेवक स्वयं समुपस्थित हो जाते हैं, इसी प्रकार निष्काम भक्त के हृदय में जहाँ भक्ति भवानी का प्रादुर्भाव हुआ नहीं वहाँ धर्म, ज्ञान, वैराग्य, सम, दम, तितिक्षा, उपरति तथा अन्यान्य समस्त सद्गुण बिना बुलाये अपने आपही भक्ति के प्रभाव से स्वतः आ जाते हैं जितने देवता हैं वे भी अनिमन्त्रित आकर एकत्रित हो जाते हैं। इसके विपरीत जो भक्त नहीं, भगवान् के प्रेमी नहीं, जिनके मनमें नाना विषय भोगों की वासना बनी रहती है, अन्तःकरण में भाँति-भाँति के सङ्कल्प विकल्प उठते रहते हैं, जिह्वा स्वादिष्ट पदार्थों के लिये ललचायी रहती है, स्पर्शेन्द्रिय कोमल से कोमल स्पर्श के लिये आकुल बनी रहती है, औपस्थ और जिह्वा समस्त कृपणता के कारण जिनकी श्वान वृत्ति बन गयी है, जिनका चित्त तुच्छ बाह्य विषयों की ओर दौड़ता रहता है, ऐसे अभक्तों में विषय लोलुपों में भौतिक धारणों में भला सद्गुण कैसे आसकते हैं। अतः हे नृसिंहदेव ! हमें सद्गुणों की भी इच्छा नहीं हमें तो तुम्हारी अहैतुकी भक्ति ही चाहिये। तुम्हारी भक्ति के आने पर अन्य सब तो बिना बुलाये ही आ जायँगे।

हे भगवन्! जो पक्षी आकाश में ही रहता है जिसका आकाश से अण्डा गिरकर भूमि में नहीं आता बीच में ही अण्डा फट जाता है, उसमें का बच्चा उड़कर पुनः आकाश में ही विचरण करने वाले माता पिता के समीप चला जाता है। ऐसे पक्षियों का एकमात्र आधार आकाश ही है। जैसे अन्न खाने वालों का आधार अन्न ही है, जैसे तुरन्त पैदा होने वाले शिशु का आधार दुग्ध ही है जैसे निरन्तर जल में ही रहने वाली मछलियों का आधार जल ही है जल के बिना वे एक क्षण भी नहीं रह सकती उसी प्रकार समस्त देहधारी प्राणियों के एकमात्र आधार भगवान् वासुदेव ही हैं, रोम-रोम में रमने वाले राम हैं, नृहरि तनुधारी आप नरहरि ही हैं। ऐसे आप सच्चिदानन्द स्वरूप सर्व समर्थ प्रभु को त्यागकर जो नर नारी जो स्त्री पुरुष जो वरवधू गृह में आसक्त रहते हैं। निरन्तर नौन तेल लकड़ी की ही चिन्ता में व्यस्त बने रहते हैं, वे चाहें आयु में कितने भी बड़े क्यों न हो कितने भी भारी विद्वान क्यों न हो उन्हें बड़ा नहीं कहा जा सकता बड़ा तो वही है जिस देह के हृदय में समस्त सद्गुणों की जननी भक्ति हो, आयु का बड़प्पन कोई बड़प्पन नहीं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार स्तुति करने के अनन्तर भक्तवर प्रह्लादजी अपने सङ्गी साथी सगे सम्बन्धी दैत्यों से कहते हैं—"हे दैत्यो! तुम भोगों की तृष्णा को सर्वथा त्याग दो, विषयों में राग मत करो, इच्छित वस्तु के प्राप्त होने पर या नष्ट होने पर विषाद मत करो। अपने मन के प्रतिकूल आचरण होने पर किसी पर क्रोध न करो मैं इतना बड़ा हूँ, इतना धनी मानी सम्पत्तिशाली हूँ, ऐसा अभिमान भी मत करो। संसारी भोगों को भोगने की इच्छा भी न करो किसी को शत्रु समझकर

अपना अनिष्टकारी मानकर भय भी मत करो। दूसरों के सम्मुख विषय भोगों की प्राप्ति के लिये दीनता भी मत दिखाओ, तथा नाना सांसारिक चिन्ताओं को छोड़ दो। यह दम्पति से युक्त घर नाना मानसिक सन्तापों का मूल है, इसी घर गृहस्थी की चिन्ता में फँसकर प्राणी निरन्तर चिन्तित बना रहता है मरते समय भी मन घर-बार, स्त्री परिवार में ही अटका रहता है, इससे फिर दूसरे जन्म में वही घर गृहस्थी स्त्री बच्चे प्राप्त होते हैं फिर उन्हीं की चिन्ता करते करते मृत्यु होती है फिर जन्म होता है, इस प्रकार अनन्त काल तक यही संसार चक्र, जन्म मरण का उलट फेर लगा रहता है। इसलिये घर गृहस्थी को त्यागकर इन सबसे मुँह मोड़कर भगवान् नृसिंह प्रभु के निर्मल पादपद्मों का आश्रय ग्रहण करो। यही मेरी आप सबसे प्रार्थना है।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! यह मैंने हरिवर्ष में प्रह्लादजी कृत नृसिंह भगवान् की स्तुति कही। अब केतुमाल खण्ड में जिस प्रकार सम्वत्सर की पुत्रियों सहित लक्ष्मीजी भगवान् की स्तुति करती हैं, उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।"

छप्पय

जाकी स्वारथ रहित भगति भगवत में होवै।
आवैं सद्गुन समिटि प्रेम मल मनको धोवै॥
प्रभु प्रानिनि प्रिय परम प्रान के प्रान कहावैं।
तजि तिनिकूँ जे विषय फँसैं वय विरथ गँवावैं॥
राग, द्वेष, भय, दीनता, मोह कोह, तिस्ना तजो।
जनम मरन के मूल घर, तजि नरहरि चरननि भजो॥

पद

नरहरि सबकूँ सुखी बनाओ।
निरभय बनि जन मन हरषायँ, खलता खलनि नसाओ ॥१॥
हित चिन्तन सब करें परस्पर, मन शुभ पथहिँ लगाओ।
भगवत् भजन करें नित तुमरो, जग आसक्ति छुड़ाओ ॥२॥
राग होहि भगतनि चरननि में, हरिरस सुधा पिआओ।
भक्ति सङ्ग सद्‌गुन सब आवत, ताकूँ हिये बुलाओ ॥३॥
मछरी पल पल जल ज्यों चाहत, त्यों प्रियता प्रकटाओ।
जनम मरन मृतक तन घरमें, मति मनकूँ ललचाओ ॥४॥
तृष्ना, राग, द्वेष, भय, इच्छा, ममता मदहिँ मिटाओ।
छुरवाओ प्रभु सब जग बन्धन, चरननि चित्त फँसाओ ॥५॥

प्रह्लादकृत नृसिंहस्तुति

ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे,
आविराविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् ।
रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस ॐ नमो स्वाहा,
अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठा ॐ क्ष्रौम् ॥१॥

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां,
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथोधिया ।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे,
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥२॥

मागारदारात्मजवित्तबन्धुषु,
सङ्गो यदि स्याद्भगवत्प्रियेषु नः ।
यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान्,
सिद्ध्यत्यदूरान्न तथेन्द्रियप्रियः ॥३॥

सत्सङ्गलब्धं निजवीर्यवैभवं,
तीर्थं मुहुः संस्पृशतां हि मानसम् ।
हरत्यजोऽन्तः श्रुतिभिर्गतोऽङ्गजं
को वै न सेवेत मुकुन्दविक्रमम् ॥४॥

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना,
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ।

हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा,
मनोरथेनासति धावतो वहिः ॥५॥
हरिर्हि साक्षाद्भगवान् शरीरिणाम्,
आत्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम् ।
हित्वा महास्तं यदि सज्जते गृहे,
तदा महत्वं वयसा दम्पतीनाम् ॥६॥
तस्माद्रजोरागविषादमन्यु,
मानस्पृहाभयदैन्याधिमूलम् ।
हित्वा गृहं संसृतिचक्रवालं,
नृसिंहपादं भजताकुतोभयमिति ॥७॥

श्रीलक्ष्मीजी कृत भगवान् कामदेवकी स्तुति

(३५)

स्त्रियो व्रतैस्त्वा हृषिकेश्वर स्वतो
ह्याराध्य लोके पतिमाशासतेऽन्यम् ।
तासां न ते वै परिपान्त्यपत्यम्,
प्रियं धनायूंषि यतोऽस्वतन्त्राः ॥*
(श्रीभा० ५ स्क० १८ अ० १९ श्लो०)

छप्पय

सम्वतसर सुत सुता संग श्री केतुमाल महँ ।
करैं काम हरि विनय फँसी सब रूप जालमहँ ॥
कहैं—"नाथ ! सब नारि करैं व्रतपतिहितजगमें ।
ते परवश पति फँसे स्वयं भय सुत प्रिय धनमें ॥
वे का रक्षा करि सकें, प्रभु ! रक्षक पति आप हैं ।
जो तुमरो पूजन करैं, तिनि नहिँ भय दुख ताप हैं ॥

नव खण्डों में एक केतुमाल नामका खण्ड है उस खण्ड के निवासियों के इष्ट देव भगवान् कामदेव हैं। उस खण्ड

---

* लक्ष्मीजी भगवान् कामदेव की स्तुति करती हुई कहती हैं—"हे प्रभो ! नारियाँ विविध प्रकार के व्रतों द्वारा आपकी उपासना करके अन्य पतियों की आशा करती हैं। किन्तु वे बनावटी पति उनके प्रियजनों की धन की तथा आयु की रक्षा करने में समर्थ नहीं हैं क्योंकि वे स्वयं ही स्वतन्त्र होते हैं और आप समस्त इन्द्रियों और अन्तःकरण के अधीश्वर हैं।"

में एक रूप से लक्ष्मीजी निवास करती हैं। लक्ष्मीजी सम्वत् सर नाम के प्रजापति की पुत्रियों और पुत्रों के सहित उस खंड में रहकर अपने आराध्यदेव भगवान् कुसुमायुध की उपासना करती हैं। उस खंड में प्रजा की वृद्धि नहीं होती। प्रजा की वृद्धि तो तब हो जब वहाँ की स्त्रियों के गर्भ रहे। सम्वत्सर प्रजापति के पुत्र छत्तीस सहस्र हैं और उतनी ही कन्यायें हैं। सम्वत् सर काल के अधिष्ठातृ देव हैं उनके पुत्र दिन के अधिष्ठातृ देव हैं और पुत्रियाँ रात्रि की अभिमानी देवियाँ हैं। मनुष्य की परमायु सौ वर्ष की बतायी है एक वर्ष में ३६० दिन तथा ३६० रात्रियाँ होती हैं। सौ वर्ष में वे छत्तीस सहस्र हो जाती हैं। उन कन्याओं को भगवत् कृपा से गर्भ रह जाता है किन्तु वर्ष के अन्त में श्रीमन्नारायण के परमदिव्य अस्त्र सुदर्शनचक्र के तेज से वह गर्भ निष्प्राण होकर स्खलित हो जाता है अर्थात् बीती हुई यामिनी फिर लौटकर नहीं आती। इस प्रकार उस काल चक्र के साथ वे रात्रि दिन के अधिष्ठातृ प्रजापति के पुत्र वे ही घूम फिरकर घूमते रहते हैं। उनके नूतन पुत्र पौत्र नहीं होते। लक्ष्मीजी शोभा कान्ति तथा श्री की अधिष्ठातृ देवी हैं। समस्त दैवी ब्राह्मी आसुरी तथा मानवी श्री काल के पुत्र पुत्रियों अर्थात् दिन रात्रि के ही ऊपर निर्भर हैं। भगवान् वहाँ लक्ष्मीजी का प्रिय करने के निमित्त उन्हें रिझाने को दिन रात्रि को मनोहर मोहक बनाने को मन्मथ के रूप से विराजते हैं। अतः उस खंड में किसी प्रकार की शोभा नहीं, निरानन्द नहीं, अशोभन नहीं। संसार में जितनी शुचिता है पवित्रता है पावनता है मनोहरता है सरसता है रमणीयता है लावण्यता है मधुरता है उज्वलता है उन सबके अधिष्ठातृ देव भगवान् कुसुमायुध हैं वहाँ वे अपने परमरम्य अत्यन्त मनोहर रूप से साकार रखकर विराजमान रहते हैं। वहाँ वे

अपनी मनोरमता की चरम सीमा दिखा देते हैं। उनकी श्री आनन कोटि पूर्ण चन्द्र की आभाओं को फीकी बना देते हैं वहाँ उनका तेज परम सौम्य तथा सहनीय होता है। वह आकर्षक मुखारविन्द परमरम्य गति विलास से सुमधुर मन्द-मन्द मुसकान से लक्ष्मीजी को हठात् अपनी ओर खींच लेता है। कटाक्ष की कमनीय क्रीड़ा ब्रीड़ा तथा मधुरिमा से वह छवि अनुभव गम्य ही है। भाव मय भव्य भृकुटियाँ भव्यता की भंगियों द्वारा, कटाक्ष के कारण किंचित् ऊपर उठी हुई वे तीक्ष्ण बाण से भी अधिक वेधक किन्तु सुखद प्रतीत होती हैं। हास्य, कटाक्ष, मुसकान आकर्षण तथा लावण्य आदि के कारण वह अनुपम आनन अत्यन्त ही सुखद सरस तथा शोभा युक्त बन जाता है। उसे देखकर लक्ष्मीजी लट्टू हो जाती हैं देखती की देखती ही रह जाती हैं। परम भागवती रमणी उन परम श्रेष्ठ रमण को पाकर प्रफुल्लित हो जाती हैं। भगवान् भी उनका प्रिय करने के निमित्त उनके साथ रमण करते हैं। लक्ष्मीजी परम समाधि द्वारा अहर्निशि अपने आराध्य देव की आराधना में ही संलग्न रहती हैं। पलपल क्षणक्षण अनन्यभाव से उनका ही स्मरण भजन पूजन करती रहती हैं। दिन में तो सम्वत् सर के पुत्रों दिन के अभिमानी देवों के साथ और रात्रि में पुत्रियों रात्रि की अभिमानी देवों के साथ उपासना में निरत रहती हैं। पहिले तो वे मन्त्र जप करती हैं फिर मन्त्रार्थ रूप से भगवान् कुसुममायुध की स्तुति करती हैं। मन्त्र का भावार्थ यह है। उस समय मन्त्र का बीज मन्त्र है ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ हे भगवन्! आप सम्पूर्ण इन्द्रियों के नियन्ता हो बाह्य करण अर्थात् वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ लिंग त्वक्, कर्ण, चक्षु, रसना और घ्राण ये बाहर की इन्द्रियाँ और मन बुद्धि चित्त तथा अहंकार ये अन्तःकरण अर्थात् भीतर की इन्द्रियाँ आपकी प्रेरणा के बिना कुछ भी करने में समर्थ नहीं।

आप इन सभी भीतरी बाहरी इन्द्रियों के ईश हो ऐसे हृषीकेश रूप आपको नमस्कार है। संसार में जितनी श्रेष्ठ वस्तुएँ हैं जो भी विभूतिवान् ऐश्वर्यवान् श्रीमान् तथा गुणवान् व्यक्ति हैं वस्तुएँ हैं उन सभी वस्तुओं द्वारा आप ही उपलक्षित होते हैं। ऐसे आप सर्व गुण विशेषों द्वारा विशेष रूप से लक्षित होने वाले आपको नमस्कार है।

चित्त के जितने धर्म हैं जैसे समस्त कर्मों को कराना कर्मेन्द्रियाँ बिना मन की प्रेरणा के कुछ भी करने में समर्थ नहीं। बिना चित्त की प्रेरणा के पैरगमन नहीं कर सकते हस्त आदान प्रदान नहीं कर सकते नेत्र देख नहीं सकते कण सुन नहीं सकते मन सङ्कल्प विकल्प आदि अध्यवसाय नहीं कर सकता। इससे सिद्ध हुआ क्रियाशक्ति ज्ञानशक्ति और सङ्कल्प अध्यवसाय आदि चित्त के धर्म हैं अब ज्ञान कर्म तथा सङ्कल्पादि अध्यवसाय के जो विषय हैं उन सबके आप अधीश्वर हैं ऐसे आकृतियों चित्तियों और विषयों के अधिपति रूप आप परमेश्वर को नमस्कार है। पाँच ज्ञानेन्द्रिय पाँच कर्मेन्द्रिय, एक मन तथा शब्द, स्पर्श रूप, रस और गंध ये पाँच विषय इन सोलह कलाओं से आप युक्त हैं ऐसे षोडश कला रूप आपको नमस्कार है। आप वेदमय हैं अर्थात् वेदोक्त कर्मों द्वारा ही प्राप्त होने वाले हैं ऐसे छन्दो मय आपको पुनः पुनः प्रणाम है। आप अन्नमय हैं अर्थात् अन्न को ब्रह्म मानकर उपासना करने वालों को प्राप्त होने वाले हैं ऐसे अन्नमय आपको नमस्कार है। आप अमृतमय हैं अर्थात् जो अयाचित वृत्ति धारण करके आपकी उपासना करते हैं या आपको अमृत रूप मानकर आपका भजन करते हैं उन्हें प्राप्त होते हैं ऐसे अमृतमय आपको नमस्कार है। आप सर्वमय है। संसार में यावत पदार्थ हैं जो भी कुछ देखा सुना या मनन किया

जा सकता है जिसकी भी कल्पना की जा सकती है सभी आप के ही स्वरूप हैं ऐसे सर्वमय आपको बारम्बार प्रणाम है। मन में जो बल है जिसे साहस के नाम से पुकारते हैं वह भी आप ही हैं अथवा अदम्य साहस द्वारा ही आपकी ओर बढ़ा जा सकता है ऐसे साहस रूप आपको नमस्कार है। ज्ञानेन्द्रियों में जो बल होता है विशुद्ध श्रवण शक्ति विशुद्ध दर्शन शक्ति आदि जो ज्ञानेन्द्रियाँ जन्य शक्तियाँ हैं वे सब आपके ही रूप हैं अथवा अप्रतिहत इन्द्रिय शक्तियों द्वारा आप प्राप्त किये जाने वाले हैं ऐसे ओज स्वरूप आपको प्रणाम है। देह की अर्थात् कर्मेन्द्रिय की शक्ति का नाम बल है। वह भी आपका ही स्वरूप है बल हीन आपको प्राप्त नहीं कर सकते ऐसे बल स्वरूप आप को प्रणाम है। आप सबसे सुन्दर हैं आप ही परम कान्त हैं, ऐसे कामदेव भगवान् को भीतर बाहर सभी ओर से बारम्बार नमस्कार है।

सूतजी कहते हैं—"हे मुनियो! इस मंत्र को जपने के अनंतर लक्ष्मी जी सम्वत् सर प्रजापति की कुमार कुमारियों के सहित इस प्रकार स्तुति करती हैं—प्रभो! स्त्रियों की स्वाभाविका इच्छा होती है पति प्राप्त करने की। स्त्रियाँ किसी का आश्रय चाहती हैं वे किसी को आत्मसमर्पण करने के लिए व्यग्र रहती हैं। वे चाहती हैं किसी को अपना शरीर सौंप दें वह हमारे तन मन का अधिप बन जाय। इसीलिये पतिका नाम स्वामी है। वे चाहती हैं हम किसी की बन जायँ वह हमारा भरण पोषण करे। इसी लिये पति का नाम भर्ता है। पालन करने से रक्षा करने से ही वह पति कहलाता है। बाल्यावस्था व्यतीत हो जाने पर पति प्राप्ति की अभिलाषा स्त्रियों में प्राकृत होती है इसी सुन्दर पति

इसके निमित्त कुमारियाँ बड़े-बड़े व्रत रखती हैं देवी आदि का पूजन करती हैं उपवास रखती हैं और देवी देवताओं की स्तुति करती हैं। आप समस्त इन्द्रियों के अधीश्वर हृषीकेश को जप तप, व्रत, आराधन तथा पूजन द्वारा प्रसन्न करती हैं। वे चाहती हैं—हमें सुन्दर स्वस्थ समर्थ सरस सच्चरित्र, सरल, सुकुमार सौम्य, साहसी युवक तथा रतिप्रिय प्राप्त हो। आपकी कृपा से उन्हें पति मिल भी जाता है उसके द्वारा सन्तानें भी होती हैं किन्तु जब पुत्र रोगी होता है तो वह पति उसे स्वस्थ नहीं कर सकता। प्राणों से भी प्रिय पुत्र मर जाता है तो उसे वह काल से बचा नहीं सकता। घरमें का धन चोरों द्वारा अग्नि द्वारा भोगों द्वारा अथवा दान द्वारा चुक जाता है नष्ट हो जाता है तो वह उसकी रक्षा नहीं कर सकता। स्वयं को लेने मृत्यु आ जाए तो उससे लड़कर प्राण नहीं बचा सकता। जो स्वयं काल का कवल है वह अन्यों की रक्षा करेगा ही कैसे? जो स्वयं समर्थ नहीं, स्वतन्त्र नहीं उससे क्या आशा की जा सकती है। जो निज में ही परतन्त्र है वह दूसरे को स्वतन्त्र कैसे बना सकता है। जो स्वयं भयभीत है वह अन्यों को निर्भय कैसे कर सकता है?

हे स्वामिन्! वास्तविक यथार्थ पति तो वही है जो स्वयं स्वतन्त्र हो निर्भय और सर्व समर्थ हो। जिसे स्वयं न किसी का भय हो और न किसी के अधीन ही हो। वह चाहे जिसकी रक्षा करने में समर्थ हो जिसका जब चाहे भय भगा सकता हो सच्चा पति कहलाने का अधिकारी वही है। भगवन्! आपके अतिरिक्त दूसरा ऐसा कोई पति हो ही नहीं सकता। आपके अतिरिक्त सभी प्राणी मरण शील हैं। सभी काल व्याल के भय से भयभीत हुए इधर से उधर भाग रहे हैं सभी नाम दाम की डोरी में बँधे कामिनी कांचन को ही सर्वश्रेष्ठ सुख मानकर

उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न शील दृष्टिगोचर होते हैं। आप ही एक ऐसे हैं जो आत्म लाभ से श्रेष्ठ अन्य किसी को कुछ मानते ही नहीं। ईश्वर तो एक ही हो सकता है वहुत से पति हों तो उनमें सदा संघर्ष ही वना रहेगा। अतः वहुत से पति न होकर आप ही इस जगत् के कर्ता हर्ता भर्ता संहर्ता, पति स्वामी तथा ईश्वर हैं।

हे देव! जो व्यक्ति वृक्ष को सींचना चाहता है वह पत्तों पर पानी डालता रहे, तो उससे क्या होने का है। केवल जड़ में जल देने से स्कन्ध, शाखा, फूल फल तथा पत्ते सभी हरे हो जाते हैं सभी में चैतन्यता आ जाती है। इसी प्रकार जो नारी एक मात्र आपका ही निष्काम भाव से भजन, पूजन, अर्चन वन्दन तथा सेवन करती हैं उसकी समस्त कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। आप उनकी समस्त मनोगत भावनाओं का समादर करके उन्हें वासना हीन वना देते हैं किन्तु जो निष्काम भाव से आपकी उपासना नहीं करतीं वे घाटे में रहती हैं। ठगी जाती हैं क्योंकि फल की इच्छा रखकर कर्म करने वाले को कृपण कहते हैं। कृपण वही कहाता है जो विना आत्म ज्ञान लाभ किये विना आपकी भक्ति किये इस लोक से चला जाता है जो किसी संसारी स्वार्थ के विना किसी कर्म में प्रवृत्त होता ही नहीं। जो फल की इच्छा रखकर सकाम भाव से आपकी उपासना करते हैं उनकी भी उपासना निष्फल नहीं जाती उन्हें भी आप देते हैं किन्तु उनके भावानुसार सीमित देते हैं जो वे चाहते हैं जिस कामना को लेकर सविधि आराधना करते हैं उनकी केवल वही कामना पूरी होती है जो फल चाहते हैं वही मिलता है। पृथ्वी से लेकर ब्रह्मलोक तक जितने भोग हैं। सभी अस्थायी सभी सीमित हैं सभी अन्त वन्त हैं। पुण्य क्षीण हो जाने पर भोग समाप्त होने पर वे पुनः

गिरा दिये जाते हैं मर्त्य लोक में ढकेल दिये जाते हैं तब उन्हें अत्यधिक पश्चात्ताप हो जाता है। फल की समाप्ति पर पुण्य क्षीण हो जाने से याचित वस्तु के भग्न हो जाने से वे बारम्बार अपनी सकामता के लिये सन्ताप करते रहते हैं।

स्तुति करती हुई लक्ष्मीजी कह रही हैं—"प्रभो! आप मेरा रूप भी कैसा मोहक बना दिया है। मुझे पाने के लिये स .लालायित रहते हैं सभी चाहते हैं मैं उन्हीं के यहाँ निवा करूँ। मनुष्यों की तो बात ही क्या इन्द्रिय सुख के आकांक्षी ब्र जी महादेव आदि महान् देव इन्द्रादि देव बलि विरोचन आ असुर सभी मुझे चाहते हैं सभी मेरी प्राप्ति के निमित्त घोर घोर तपस्या करते हैं किन्तु मैं तो आपके हाथों बिकी हुई हूँ आपको अपना सर्वस्व बना चुकी हूँ अतः आपके पाद प मकरन्द के लोलुप मधुकर भक्त के अतिरिक्त अन्य किसी. समीप जाने में मुझे सङ्कोच होता है क्योंकि मैं या तो आप समीप रह सकती हूँ या आपके आश्रितों के आश्रय में ठह सकती हूँ कारण कि मेरा मन तो आप में लगा हुआ है। मैंने तो आपको ही जीवन धन प्राण वल्लभ मान रखा है।

हे अच्युत! हे भक्त भय हारी! आपके भक्तगण आपके श्री अंगों की वन्दना करते हैं आप भी अपने भक्त वन्दित कर कमल को भक्तों के नत मस्तक पर रखकर उन्हें अभय प्रदान करते हैं। हे भक्तानुग्रह कातर प्रभो! उसी अभय देने वाले कर कमल को मेरे मस्तक पर भी रख दें। मुझे भी कृतार्थ कर दें। आप मेरे ऊपर अनुग्रह रखते हैं कृपा करके लांछन रूप से अपने विशाल वक्षःस्थल में मुझे सदा सर्वदा धारण किये रहते हैं। यह आप की मेरे ही ऊपर महती अनुकम्पा है। आप सर्व समर्थ हैं सर्व तन्त्र स्वतन्त्र हैं आप लीलाधारी हैं मायापति हैं आपकी माया-

मयी लीला का भेद जानने में कौन समर्थ हो सकता है। अतः हम तो आपके पादपद्मों में केवल प्रणाम ही कर सकती हैं। हे जगन्निवास! आप हम पर प्रसन्न हो जाओ। अपनी कृपा दृष्टि की वृष्टि से हमारे शुष्क हृदय को परिप्लावित कर दो।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! यह मैंने केतुमाल खण्ड में श्री लक्ष्मीजी द्वारा की हुई कामदेव भगवान् की स्तुति कही। अब जैसे रम्यक खण्ड में प्रजापति मनु मत्स्य भगवान् की जैसे स्तुति करते हैं उस कथा प्रसङ्ग को आगे कहूँगा। आप सब दत्तचित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

नारि कामना त्यागि प्रेम तैं तुमकूँ ध्यावैं।
उभयलोक सुख लहहिँ सहज सब कछु पावैं॥
फल इच्छा तें करैं मिलै फल उतनो उनकूँ।
तप करि सुर नर असुर लगावैं मोमें मनकूँ॥
हौं तव तव भक्तनि निकट, रहूँ अनत मम चित चपल।
अभय करन कर सिर धरहु, तव माया प्रभु अति प्रबल॥

पद

प्रभो! पति तुमही साँचे स्वामी।
का रक्षा करि सकें मनुज करि, पति कायर क्रोधी कामी॥१॥
करें जासु हित विविध नियम व्रत पावें पति परिनामी।
सुत, धन, वय की रक्षा नित नित, करूँ भरें नहिं हामी॥२॥
तातें प्रभु अपनाओ अच्युत, होवें हम निषकामी।
धरो कमल कर सिर कुसुमायुध, हे अज अन्तरयामी॥३॥

लक्ष्मी कृत कामदेव स्तुति

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय,
सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मने ।
आकूतीनां, चित्तीनां, चेतसां विशेषाणां चाधिपतये,
षोडशकलायच्छन्दोमयायान्नमयायामृतमयाय ।
सर्वमयाय सहसे ओजसे बलाय कान्ताय,
कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात् ॥१॥
स्त्रियो व्रतैस्त्वा हृषिकेश्वरं स्वतो,
ह्याराध्य लोके पतिमासतेऽन्यम् ।
तासां न ते वै परिपान्त्यपत्यं,
प्रियं धनायूंषि यतोऽस्वतन्त्राः ॥२॥
स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वयं,
समन्ततः पाति भयातुरं जनम् ।
स एक एवेतरथा मिथो भयं,
नैवात्मलाभादधि मन्यते परम् ॥३॥
या तस्य ते पादसरोरुहार्हणं,
निकामयेत्साखिलकामलम्पटा ।
तदेव रासीप्सितमीप्सितोऽर्चितो,
यद्भग्नयाच्ञा भगवन् प्रतप्यते ॥४॥

मत्प्राप्तयेऽजेशसुरासुरादयः,
तप्यन्त उग्रं तप ऐन्द्रियेधियः ।
ऋते भवत्पादपरायणान्न मां,
विन्दन्त्यहं त्वद्धृदया यतोऽजित ।।५।।
स त्वं ममाप्यच्युत शीर्ष्णि वन्दितं,
कराम्बुजं यत्त्वदधायि सात्वताम् ।
बिभर्षि मां लक्ष्म वरेण्य मायया,
क ईश्वरस्येहितमूहितुं विभुरिति ।।६।।

श्रीमनुकृत मत्स्य भगवान् की स्तुति

(३६)

अन्तर्बहिश्चाखिललोकपालकै-
रदृष्टरूपो विचरस्युरुस्वनः ।
स ईश्वरस्त्वं य इदं वशेऽनयन्,
नाम्ना यथा दारुमयीं नरःस्त्रियम् ॥[*]
(श्रीभा० ५ स्क० ८ अ० २६ श्लो०

छप्पय

रहिके रम्यक खण्ड करें मनु प्रभु आराधन ।
मच्छ रूप भगवान् इष्ट करि अरपें तन मन ॥
कहँ—"प्रभो ! तुम जीवनिकूँ नित नाच नचाओ ।
नट कठपुतलिनि भाँति नचाके खेल खिलाओ ॥
अलख निरञ्जन गुन रहित, भीतर बाहर नित भ्रमत ।
प्रान रूप भीतर रहत, वायु रूप बाहर सतत ॥

नव खंडों में से एक रम्यक नामक खंड है उस खंड

---

[*] प्रजापति मनु रम्य खंड में रहकर भगवान् की मत्स्यरूप से स्तुति करते हुए कहते हैं—"हे भगवन् ! आप ब्रह्मा आदि सकल लोकपालों से अलक्षित रहकर प्राणियों के भीतर बाहर विचरते रहते हैं । तथा महान् शब्द करनेवाले हैं । जिस प्रकार नट कठपुतलियों को अपनी इच्छानुसार नचाता रहता है । उसी प्रकार विविध नामों से सम्पूर्ण जगत् को कर्म में लगाकर नचाते रहते हैं, भ्रमाते रहते हैं ।

के अधिपति प्रजापति मनु हैं। पूर्वकाल में जब मनु कृतमाला नदी के तटपर सन्ध्या कर रहे थे, तब भगवान् ने उन्हें अपने मत्स्यावतार के दर्शन कराये थे, और अपने सींगमें एक दृढ़ नौका बँधवाकर सकल औषधियों और सप्तर्षियों सहित मनु की रक्षा की थी तथा प्रलय रात्रि पर्यन्त उन्हें लेकर महासमुद्र में घूमते रहते थे। मनु महाराज एक रूप से रम्यक वर्ष में रहकर उन्हीं अपने इष्टदेव मत्स्य भगवान् की उपासना करते हैं, तथा उस खंड के निवासी सकल जन मत्स्य भगवान् की ही पूजा अर्चा तथा स्तुति करते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! रम्यक द्वीपमें जिस मंत्र से मनु महाराज भगवान् मत्स्य को रिझाते हैं, जिस मन्त्रका जप करते हैं उसका भावार्थ यह है इस मन्त्र का बीज मन्त्र ओंकार है। ये कूर्म भगवान् प्राणों के अधिष्ठातृ देव हैं। सभी वर्षों में उपासित अवतार किसी एक तत्व के अधीश्वर हैं। जैसे अहंकार के सङ्कर्षण, धर्मके पुत्र हयग्रीव, तेजके नृसिंह, कामके कुसुमायुध, समस्त तत्वों के कूर्म, कर्मके यज्ञ, सगुन निर्गुण उपासना के राम और तपके नरनारायण। उन उन द्वीपोंमें उन्हीं क्रियाओं द्वारा इनकी उपासना होती है। कूर्म भगवान् मुख्य प्राणके अधिष्ठातृदेव हैं, अतः प्राणायाम द्वारा इनकी उपासना होती है और प्राणों का ही प्राधान्य मानकर स्तुति भी की जाती है। प्राणों से ही बल होता है। वह बल तीन प्रकार का होता है। दैहिकबल, इन्द्रियबल, और मनोबल, इसीलिये उसके सह ओज और बल ये तीन नाम हैं। मन्त्रों में पहिले बीज रहता है। फिर इष्ट का नाम होता है उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है, फिर अन्त में नमः या स्वाहा लगाया जाता है। इस मत्स्य मन्त्र का बीज ओंकार है। शरीर में मुख्य प्राण ही माने

जाते हैं। प्राण भी दश हैं, उनमें जो सबसे मुख्य हैं वे प्राण हैं। अतः कहते हैं—"भगवान् मुख्यतम प्राणके लिये नमस्कार है। सूत्रात्मा भगवान् को नमस्कार है। मनके बलरूप भगवान् को नमस्कार है, इन्द्रियों के बलरूप भगवान् को नमस्कार है, शरीर रूप भगवान् को नमस्कार है महामत्स्यरूप भगवान् को नमस्कार है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मन्त्रजप के अनन्तर मनुजी स्तुति करते हुए कहते हैं—"हे प्रभो! आप बड़े मायावी हैं। सम्पूर्ण जगत् को आप अपने तनिक से संकेत पर इच्छानुसार नचा रहे हैं। फिर भी आप सबको दृष्टिगोचर नहीं होते। आप वेदस्वरूप हैं, ज्ञान ही आपका यथार्थ स्वरूप है। मन्त्र ही आपकी मूर्ति है। आप महान् शब्द करनेवाले हैं। आपसे बढ़कर कोई शब्द उच्चारण नहीं कर सकता। अपने अपने शब्दों द्वारा सभीको वशमें कर रखा है। यह ब्राह्मण है, यह क्षत्रिय है, यह कर्तव्य है, यह अकर्तव्य है, यह विधि है, यह निषेध है इत्यादि इत्यादि निषेध के आश्रय से विभिन्न नामों द्वारा अखिल विश्व को कर्म में लगा रखा है। सब विवश होकर कर्मों में लगे हुए हैं। कोई कुछ बोलता नहीं, दैवगति प्रारब्ध के भोग तथा भाग्य का खेल कहकर सभी तत्परता के साथ कर्मों में जुटे हुए हैं। आसक्तिपूर्वक कुछ अनासक्त रहकर भी कर्मों का कह रहे हैं। कराने वाले आप ही हैं। सबका सञ्चालन आपके ही द्वारा हो रहा है। अपनी इच्छा से स्वतन्त्रता पूर्वक कोई पलक भी नहीं मार सकता किन्तु आपने योगमाया की एक झीनी सी ऐसी यवनिका डाल रखी है, ऐसा घूँघट मार रखा है, आप स्वयं दिखाई नहीं देते। जैसे दारुमयी योषित काठ की बनी पुतलियाँ भाँति भाँति

के नृत्य दिखाती हैं। परस्पर में लड़ती भिड़ती हैं, विविध भाँति के हाव भाव कटाक्ष करके दर्शकों को रिझाती हैं, हँसाती हैं, आश्चर्य में डालती हैं। सभी समझते, ये कठपुतलियाँ स्वतन्त्र नाच रही हैं, किन्तु ध्यानपूर्वक देखा जाय तो वे स्वतन्त्र रूपसे कुछ भी नहीं कर सकतीं। भीतर बैठा बैठा नट सूत्र द्वारा उन सबको नचा रहा है। सूत्रधार की इच्छा से ही उसके संकेत पर ही वे समस्त क्रियाओं को करती हैं। इसी प्रकार आप अंडज, पिंडज, स्वेदज, उद्भिज तथा और सभी प्रकार दिव्यादिव्य योनियों के जीवों को अलक्ष भाव से चौरासीके चक्कर में घुमा रहे हैं अन्य साधारण जीवोंकी बात तो पृथक् रही ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र तथा अन्य भी सुर असुर आपका यथार्थ पता नहीं पा सकते। आप समस्त देह धारियों के भीतर प्राणरूप से निवास करते हैं और बाहर वायुरूप से विचरते हैं। आपके बिना किसीकी सत्ता की कल्पना ही नहीं की जा सकती। आप अन्तर्यामी भी हैं, चराचर के नियन्ता हैं, भीतर बाहर सर्वत्र समान रूपसे व्याप्त हैं, ऐसे आप समस्त प्राणियों के समान ईशके पादपद्मों में हमारा बारम्बार प्रणाम है।

हे स्वामिन्! आपके द्वारा नियुक्त बड़े बड़े लोकपाल हैं। प्रजापति हैं, मनु हैं, ऋषि मुनि तथा और भी अधिकारारूढ़ देव हैं, कि ये अकेले अथवा सब मिलकर भी किसी छोटे से छोटे प्राणी की रक्षा करने में भी समर्थ नहीं हो सकते। यह वरतु है डाह, मत्सर, ईर्ष्या। सबको यह अभिमान है कि हम बड़े हैं। इस बड़प्पन के अभिमान के कारण एक दूसरे से ईर्ष्या करते हैं, अपने प्रतिद्वन्दी को नीचा दिखाना चाहते हैं। अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करना चाहते हैं, किन्तु आपके बिना ईशिव भी शवके समान है। जहाँ प्राण रूप से आप नहीं वहाँ

जीवन नहीं, गति नहीं, क्रिया नहीं, चेष्टा नहीं। वहाँ तो सभी ठंठनगोपाल हैं। आप मुख्य प्राण बनकर सबको जिला रहे हैं, हिला रहे हैं, चला रहे हैं, गतिमान् हो रहे हैं। प्रभो! एकबार समस्त इन्द्रियों ने प्राणसे झगड़ा किया। हम श्रेष्ठ हैं। क्रम क्रम से सभी इन्द्रियाँ शरीरको छोड़कर चली गयीं किन्तु प्राणोंके रहने के कारण किसी प्रकार काम चलता रहा जिस समय प्राण शरीर को छोड़कर जाने लगे तो समस्त इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं। सभीने प्राणों का श्रेष्ठत्व स्वीकार किया। किन्तु यह स्वीकृति क्षणिक थी। वास्तविक बात यह कि छोटे बड़े सभी जीव मत्सर ज्वर, ईर्ष्याके कारण कुछ भी नहीं कर सकते। पृथक्-पृथक् अथवा सब मिलकर भी मनुष्य पशु, पक्षी, सरीसृप तथा स्थावर जंगम जितने भी जीव हैं, जितने भी प्राणी दृष्टिगोचर होते हैं, उनमें से एक भी वे रक्षा नहीं कर सकते। सबके एकमात्र रक्षक तो आप ही अखिलेश्वर हैं।

प्रभो! प्रलयकाल के पूर्व समुद्रतट पर मैं भी चिन्तामें मग्न बैठा था। सातों समुद्र एक हो जाने वाले थे। स्थावर जंगम सभी जलमें विलीन हो जाने वाले थे। ऐसे समय भी आपने कृपाकी। दिव्य नौकापर बिठाकर बीज ओषधियों तथा सप्तर्षियों सहित मुझे प्रलय पयोनिधि में घुमाया। जिसमें उत्ताल तरंगे उठ रहीं थीं। आपने अजन्मा होकर भी यह दिव्य मत्स्य रूप धारण किया। महान् से महान् ऐश्वर्य शाली होने पर भी आपने सींगमें नौकाकी बरतको बाँध सेवक की भाँति घुमाते रहे। आपको न श्रम हुआ न खेद ही। आप प्रसन्नता पूर्वक उस एकार्णव प्रलयकालीन समुद्रमें विहार करते रहे, इधर से उधर उल्लास पूर्वक विचरण करते रहे। इस प्रकार ओषधि और लताओं की आश्रय रूपी इस अवनि की

भूमाता की रक्षा हुई। यथार्थ आप ही सबके रक्षक हो, आप ही सबके ईश हो, आप ही जगदीश हो। सम्पूर्ण संसार के प्राण रूप आप ही हो, आपकी सत्ता से ही सभी सत्तावान् हैं। ऐसे सर्वसमर्थ प्राणों के भी प्राण जीवन के भी जीवन आप अच्युत अखिलेश को हमारा बारम्बार प्रणाम है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! यह मैंने अत्यन्त संक्षेप में रम्यकद्वीप में स्थित प्रजापति मनु द्वारा की गयी मत्स्य भगवान् की स्तुति कही। अब आप हिरण्य खण्ड में पितृराज अर्यमा द्वारा की हुई कूर्म भगवान् की स्तुति को और सुनें।

छप्पय

लोकपाल सुर असुर परस्पर डाह करें नित।
रक्षा फिर कस करें करें कैसे प्रानिनि हित॥
एक एक या सकल मिलें समरथ नहिं कोई।
जगत् माँहि बनि प्रान आपु जीवन होई॥
प्रलय पयोनिधि औषधिनि, सँग मम प्रभु रक्षा करी।
पुनि पुनि पद पदुमनि परे, प्रान रूप पालक हरी॥

पद

प्रभो ! तुम प्रान रूप बनि विहरो।
नट नागर नित नव क्रीड़ा करि, भीतर बाहर विचरो॥१॥
करत धरत सब कछु तुम स्वामी, है नहिं निकरो।
भीतर प्रान वायु बाहर बनि, भेद न दीरघ लहुरो॥२॥
प्रलय पयोधि नाव लै घूमे, ज्ञान सुनायो सगरो।
करो पार भव पयनिधि प्रभुजी, पल्ला तुमरो पकरो॥३॥

मनुकृत मत्स्य स्तुति

ॐ नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय,
प्राणायौजसे सहसे बलाय महामत्स्याय नम इति ॥१॥
अन्तर्बहिश्चाखिललोकपालकैः,
अदृष्टरूपो विचरस्युरुस्वनः ।
स ईश्वरस्त्वं य इदं वशेऽनयन्,
नाम्ना यथा दारुमयीं नरः स्त्रियम् ॥२॥
यं लोकपालाः किल मत्सरज्वरा,
हित्वा यतन्तोऽपि पृथक् समेत्य च ।
पातुं न शेकुर्द्विपदश्चतुष्पदः,
सरीसृपं स्थाणु यदत्र दृश्यते ॥३॥
भवान् युगान्तार्णव ऊर्मिमालिनि,
क्षोणीमिमामोषधिवीरुधां निधिम् ।
मया सहोरु क्रमतेऽज ओजसा,
तस्मै जगत्प्राणगणात्मने नम इति ॥४॥

अर्यमाकृत कूर्मभगवान्की स्तुति

(३७)

यद्रूपमेतन्निजमाययार्पितम्,
अर्थस्वरूपं बहुरूप रूपितम् ।
संख्यान यस्यास्त्ययथोपलम्भनात्,
तस्मै नमस्तेऽव्यपदेश रूपिणे ॥*
(श्रीभा० ५ स्क० १८ अ० ३१ श्लो०)

छप्पय

चरष हिरनमय माँहिं कूर्म तनु धरि हरि भ्राजें ।
तहँ अर्यमा पितर-राज तिनि पूजन साजें ॥
इस्तुति करिकें कहें-अलौकिक रूप तिहारो ।
जीव चतुर विधि स्वरग नरक सुर नरतनु धारो ॥
जल, थल, परवत नदी नद, ऋषि मुनि किन्नर भूप हैं ।
सकल चराचर भुवन प्रभु, सबई तुमरे रूप हैं ॥

नव खंडों में से एक हिरएमय खंड है। उस खंड के अधिपति पितृराज अर्यमा हैं। उस खंड के अधिष्ठातृ देव भगवान् कूर्म हैं। पितरों के राजा अर्यमा जी उस खंड की प्रजा को

---

* हिरएमय खंडमें भगवान्की कूर्म स्तुति करते हुए पितृराज अर्यमा कहते हैं—"हे कूर्म भगवन्! माया से प्रकाशित होने वाला जो यह प्रपञ्च है, जो नाना रूपों में प्रतीत हो रहा है, जिसकी गणना असम्भव है तथा जिसके रूप की वास्तविक प्रतीति भी नहीं होती वही दृश्य प्रपञ्च आपका रूप है, अर्थात् आप सर्व रूपमय हैं। ऐसे अनिर्वचनीय आप प्रभु को बारम्बार प्रणाम है।

साथ लेकर बड़ी श्रद्धा भक्ति से कूर्म भगवान् की उपासना करते हैं प्रथम तो वे अपने इष्ट मन्त्र का जप करते हैं, फिर स्तुति करते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! हिरण्मय खंड वासी जिस मन्त्र का जप करते हैं—पहिले मैं उसी का भाव बताता हूँ, वह इस प्रकार है—"मन्त्र का बीज ओंकार है। हम कच्छप भगवान् को नमस्कार करते हैं, जितने संसार में सात्विक गुण सुने जाते हैं अनुभव किये जाते हैं, उन सब सद्गुणों से जो युक्त हैं उन कूर्म भगवान् को नमस्कार है। जो किसी निश्चित स्थान पर निवास नहीं करते। कभी कहीं कभी कहीं इस प्रकार जलथल पर विचरते ही रहते हैं ऐसे अनिश्चित वाले कूर्म देव को प्रणाम है। जिनके सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक कार्य इन्होंने इस कालमें किया, क्योंकि वे कालकी परिधि से सर्वथा बाहर हैं। ऐसे कालातीत कूर्म भगवान को बारम्बार नमस्कार है। जो सभी स्थानों में समान भाव से व्याप्त हैं—ऐसे सर्वव्यापक कूर्म भगवान् को प्रणाम है। जिनके सहारे यह सम्पूर्ण संसार खड़ा है जो जगत् के एकमात्र आधार स्तम्भ हैं उन कूर्म भगवान् को बारम्बार प्रणाम है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! मन्त्र जप के अनन्तर पितृराज अर्यमा इस प्रकार स्तुति करते हैं—"प्रभो ! आप दृष्टिगोचर नहीं होते परोक्ष रहकर जगत् के कार्यों द्वारा अपनी अनुभूति कराते है, या यों कहिये कि स्वयं दूध ही जमकर जैसे दही बन गया है, उसी प्रपंच को आपने अपना रूप बना लिया है आपके वास्तविक रूप की प्रतीति तो होती नहीं असंख्य रूपों में आप हो फैल गये हो। जगत् में जो भी कुछ दिखाई देता है, सब आपका ही रूप है।

दो पैर वाले नर नारी, चार पैरवाले पशु आदि जो भी माता के गर्भ से जरायु नाम की भिल्ली से ढके हुए उत्पन्न होते हैं वे सब आपके ही रूप हैं पक्षी जलचर, चींटी, सर्प तथा और भी जितने अंडों द्वारा उत्पन्न होने वाले अंड जीव हैं उन सबका रूप आपने ही रख लिया है, जो स्वेद से पसीने से उत्पन्न होने वाले जूआँ आदि हैं वे भी सब आपके ही रूप हैं। भूमि को फोड़कर उत्पन्न होनेवाले वृक्ष, गुल्म, लता, वीरुध आदि जितने उद्भिज प्राणी हैं, सब आपही के स्वरूप हैं। जितने चलने फिरने वाले जीव हैं तथा जितने न चलने वाले वृक्ष, पर्वत आदि हैं कहाँ तक गिनावें। जितने स्वर्ग में रहने वाले देवता हैं, पितरलोक में रहने वाले पितृगण हैं, जितने भूत हैं, जितनी इन्द्रियाँ हैं, जितने ब्रह्मर्षि देवर्षि तथा राजर्षि आदि ऋषिगण हैं, जितने स्वर्गलोक हैं पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश पंचभूत हैं, वन, पर्वत, नदी, नद, झरने, वापी, कूप, तड़ाग, आराम, खेट, खर्वट, ग्राम, नगर, पत्तन, द्वीप, समुद्र, ग्रह, तारा, सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य भी जितने नाम रूप हैं, सबमें आपही प्रतीत हो रहे हैं, संसारमें कितनी वस्तुएँ हैं, कितने नाम हैं, इनकी गणना न तो आज तक किसी ने की है, न कोई कर ही सकता है, फिर भी दार्शनिकों ने—विद्वानों सबका एक दूसरे में समावेश करके संसार में कुल चौवीस तत्व बताए हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पंचभूत, पंच तन्मात्रायें और मन बुद्धि अहंतत्व और महत्तत्व ये ही चौवीस तत्व हैं। इन सबकी निवृत्ति भी तत्व ज्ञान द्वारा हो जाती है, अंत में एक ही परमात्मा तत्व रह जाता है, जिस ज्ञान द्वारा इस द्वैतभाव की निवृत्ति होती है वह सांख्य सिद्धान्त भी आपका रूप है। अर्थात् आप ज्ञान स्वरूप हैं, सचिदानन्द स्वरूप हैं ऐसे आप अखंड, अद्वैत, अद्वय,

अप्रमेय, अज, अच्युत, अनादि अनन्त प्रभु के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! यह मैंने पितृराज अर्यमा द्वारा की हुई कूर्म भगवान् की स्तुति आपसे कही। अब उत्तर कुरु खण्ड में पृथ्वी देवी वहाँ के निवासियों के सहित वाराह भगवान् की स्तुति जैसे करती हैं उस प्रसङ्ग को मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

इन्द्रिय मन जहँ जायँ विश्वको सकल पसारो।
नाम रूप मय दृश्य जगत ही देह विहारो॥
अगनित आकृति मुनिनि तत्व चौबीस बताये।
पाँच पाँच हैं चार चार पुनि पृथक गिनाये॥
तत्व ज्ञान तैं एकता, होहि रूप नहिं नाम है।
सांख्य रूप सिद्धान्त जिनि, तिनि पद पदुम प्रनाम है॥

पद

कच्छप ! करुनाकार निहारो।
अगनित नाम रूप जग माहीं, सब ही रूप तिहारो ॥१॥
जल थल नभ में जो कछु दीखत, सबरो जगत पसारो।
सबमें तुम तुमही हो सबमें, तुमतें नहिं कछु न्यारो ॥२॥
तत्व ज्ञानतें सब नसि जावे, ब्रह्महि ब्रह्म विचारो।
ज्ञान रूप प्रभु कमठ चरन में, बार बार सिर धारो ॥३॥

अर्यमा कृत मंकू स्तुति

ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्वगुणविशेषणायानुपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमो नमोऽवस्थानाय नमस्ते ॥१॥

यद्रूपमेतन्निजमाययार्पितम्,
अर्थस्वरूपं बहुरूपरूपितम् ।
संख्या न यस्यास्त्ययथोपलम्भनात्,
तस्मै नमस्तेऽव्यपदेशरूपिणे ॥२॥

जरायुजं स्वेदजमण्डजोद्भिदं,
चराचरं देवर्षिपितृभूतमैन्द्रियम् ।
द्यौः खं क्षितिः शैलसरित्समुद्र,
द्वीपग्रहर्क्षेत्यभिधेय एकः ॥३॥

यस्मिन्नसंख्येयविशेषनाम,
रूपाकृतौ कविभिः कल्पितेयम् ।
संख्या यया तत्वदृशापनीयते,
तस्मै नमः सांख्यनिदर्शनाय ते इति ॥४॥

पृथ्वी कृत वराह भगवान् की स्तुति

(३८)

यस्य स्वरूपं कवयो विपश्चितो,
गुणेषु दारुष्विव जातवेदसम् ।
मथ्नन्ति मथ्ना मनसा दिदृक्षवो,
गूढं क्रियार्थैर्नम ईरितात्मने ॥❀
(श्रीभा० ५ स्क० १८ अ० ३६ श्लो०)

छप्पय

उत्तर कुरु वाराह विराजे इष्ट वहाँ के ।
इस्तुति मिलिकें करें भूमि सँग सफल तहाँ के ॥
ऋत्विक मथिकें अरनि अगिनिकूँ प्रकट करें ज्यों ।
पंडित चिन्तन मथन करें मन प्रकटे प्रभु त्यों ॥
यम नियमनिकूँ साधिके, समुझें जगतें भिन्न जिनि ।
मायामय जगतें रहित, बन्दौं पंकज चरन तिनि ॥

नौ वर्षों में से एक उत्तर कुरु नामक खण्ड है वहाँ एक

❀ उत्तर कुरु खण्ड में पृथ्वी देवी वराह भगवान् की स्तुति करती हुई कहती हैं—जिनके स्वरूप को देखने की इच्छा से परम प्रवीण पंडित गण अपने मन रूपी मन्थनकाष्ठ से उसी प्रकार मन्थन करते हैं जिस प्रकार यज्ञ में ऋत्विक् गण अरणि मन्थन करके अग्नि प्रकट करते हैं उन्हीं कर्मों की फल कामना से छिपे हुए आपके व्यक्त स्वरूप को हम नमस्कार करते हैं ।

रूप से पृथ्वी देवी निवास करती है। उस खण्ड के इष्टदेव भगवान् वराह हैं। पृथ्वी देवी वहाँ के निवासियों के सहित सूकर भगवान् की आराधना करती हैं। पहिले उनके जप करने वाले इष्ट मन्त्र का अर्थ वताकर तव उनकी स्तुति का अर्थ कहेंगे। मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है इस वराह मन्त्र का बीज ओंकार है। बीज को कहकर वे कहते हैं—"हे प्रभो! आपको तत्वमन्त्रों द्वारा ही जाना जा सकता है। वैसे तो आपकी कोई मूर्ति नहीं आप अमूर्ति हैं। तथापि मन्त्र ही आपकी मूर्ति है। अतः आपको विद्वान् लोग मन्त्र मूर्ति कहते हैं। हे भगवन्! आप यज्ञ रूप हैं क्रतु रूप हैं तथा यज्ञादि रूप आपके मन्त्र हैं। आप त्रियुग मूर्ति हैं। सत्ययुग त्रेता और कलियुग में आप प्रत्यक्ष रुप से विराजते हैं। कलियुग में गुप्त हो जाते है इसी निमित्त त्रियुग कहलाते हैं। हे स्वामिन् आप यज्ञ स्वरूप हैं। महापुरुष हैं आपको वारम्वार नमस्कार है। हे प्रभो! आप कर्म शुक्ल हैं अर्थात् विशुद्ध कर्म मय हैं आपके लिये वारम्वार प्रणाम है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मन्त्र जाप के अनन्तर पृथ्वी देवी स्तुति करती हुई कहती हैं—प्रभो! जिस प्रकार दुग्ध के कण कण में घृत व्याप्त है किन्तु दिखाई नहीं देता। जब युक्तिपूर्वक उसे मथते हैं तो घृत व्यक्त हो जाता है। काष्ठ में सर्वत्र अग्नि व्याप्त है किन्तु न तो वह काष्ठ को जलाते हैं न व्यक्त रूप से दृष्टि गोचर ही होते हैं जब ऋत्विक् गण उत्तर अरणि और अधरारणि को मथते हैं तब अग्नि देव व्यक्त रूप से प्रकट होते है। इसी प्रकार कर्मों की फल कामना से छिपे हुए उनके सर्व व्यापक स्वरूप को परम प्रवीण पंडित गण व्यक्त रूप में देखने की इच्छा से भली प्रकार मन्थन करते हैं मन से, समाहित चित्त द्वारा

चिन्तन करते हैं तव आप प्रकट होकर दर्शन देते हैं। ऐसे व्यक्त स्वरूप आप वराह भगवान् को वारम्वार नमस्कार है।

हे नाथ आप इन संसारी पदार्थों में ऐसे घुलमिल गये हैं कि आपको पाना कोई सहज काम नहीं है जैसे वहुत से पुरुषों में नई दुलहिन का पति मिल गया हो। युक्ति से सयानी सखी सब का नाम पूछती है क्या वे यह हैं। वारम्वार सिर हिलाती है। जव केवल पति शेष रह जाता है तो पूछने पर लजा जाती है। इसी प्रकार आप इन मायिक पदार्थों में छिप गये हैं और मिल गये हैं सवकी वुद्धि तो आपके विषय में विचार भी नहीं कर सकतीं। जिन्होंने चिरकाल तक अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरि ग्रह आदि यमोंका तथा शौच सन्तोष, तप, स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधान आदि नियमों का चिरकाल तक पालन किया है इनके निरन्तर पालन करते रहने से जिनकी वुद्धि निश्चयात्मिका तथा निर्मल वन गयी है। वे ही आपको अन्वय व्यतिरेकके द्वारा खोज निकाले हैं। पहिले वे इन्द्रियों के जो शब्द रूप रस गंध और स्पर्श ये विषय हैं उनमें खोजे हैं फिर सोचते हैं आप विषय नहीं हो सकते क्योंकि विषयों का अनुभव करने वाला विषयों से पृथक है। फिर विचार करते हैं विषयों से श्रेष्ठ इन्द्रियाँ ही विषयों का उपभोग करती हैं तो आप इन्द्रिय होंगे किन्तु इन्द्रियों में स्वयं भोगने की शक्ति नहीं। इन्द्रियों के द्वारा विषयों को उनके अधिष्ठातृ देव भोगते हैं तो क्या इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देव हैं। अधिष्ठातृदेव भी शरीर में रहकर भोगों द्वारा शरीर को पुष्ट करते हैं तो क्या आप शरीर हैं। फिर विचार करते हैं शरीर भी काल के अधीन है। काल आने पर शरीर भी नष्ट हो जाता है शरीर से काल वलवान् है तो क्या आप काल हैं? काल भी अहं तत्व के अधीन है अहं के विना काल की

प्रतीति नहीं हो सकती। तो क्या आप अहंतत्व हैं ? इस प्रकार विचारक लोग विचार करके तथा माया के समस्त कार्यों को देखकर विवेक द्वार बुद्धि से परे आपके वास्तविक रूप का साक्षात् करते हैं। ऐसे माया रहित मायिक नाम रूपों से रहित आप परमेश्वर के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

हे प्रभो ! आप कर्तापने के अभिमान से सर्वथा रहित हैं। कर्तृत्व भोक्तृत्व आपमें है ही नहीं। आप तो निष्प्रपंच निर्विकल्प तथा निरञ्जन हैं। जैसे दीपक कुछ नहीं करता। भवनमें केवल साक्षी बना रहता है। उसीके प्रकाश में करने वाला सब कर्मों को करता रहता है। दीपक के न रहने पर कुछ कर नहीं सकता। दीपक की सन्निधि मात्र से ही सब कार्य होते हैं। इसी प्रकार आपकी इच्छा मात्र से आपके साक्षी बने रहने से जगत् के सब कार्य होते हैं। चुंबक स्वयं कुछ कार्य करता नहीं लोहे को बुलाता नहीं किन्तु चुम्बक का आश्रय मिलते ही घूमने लगता है। इसी प्रकार आप सर्वसाक्षी की सन्निधि पाकर आपके सङ्कल्प से आपकी इच्छा मात्र से प्रकृति अपने गुणों के द्वारा जगत् को उत्पन्न करते हैं उसी के द्वारा पालन होता है अन्त में संहार भी हो जाता है। प्रश्न यह हो सकता है कि इच्छा तो अपूर्णता में होती है। आप तो आप्त काम हैं परिपूर्ण हैं निरीह तथा निर्विकल्प फर आप इच्छा करते ही क्यों हैं सो प्रभो ! आपकी इच्छा अपने लिये नहीं होती जब सम्पूर्ण प्राणियोंके कर्म फल भोगोन्मुख होते हैं तब आप समस्त चराचर जीवों को भोग भुगाने के निमित्त इच्छा करते हैं। आपका अपना तो कोई प्रयोजन ही नहीं। ऐसे गुणों के साक्षी रूप आप सर्वेश्वर को बारम्बार नमस्कार है।

प्रभो ! बलवान गज निर्बल गज को पछाड़ फर जैसे

हथनियों को अपना लेता है। स्वयं यूथपति बन जाता है। उसी प्रकार आपने महापराक्रमी देव दानवों से अजेय अपने प्रतिद्वन्दी आदि असुर हिरण्याक्ष को सूकर रूप धारण करके रण में परास्त करके उसका वध किया और मुझे रसातल से अपनी दाढ़ पर रखकर जल के ऊपर रखा था। यह आपके ही अनुरूप कार्य था। जिस समय आप मुझे रसातल से ला रहे थे उस समय आपकी अद्भुत शोभा थी। जिस प्रकार कोई मदमस्त हाथी फूली हुई कमलिनी को उखाड़कर उसे अपने मुख में दाबकर जल में क्रीड़ा करता हुआ जल के बाहर निकले उसी प्रकार आप गज-राज के समान मुझे अपनी दाढ़ों पर बिठाकर प्रलय पयोनिधि के ऊपर आये थे ऐसे सर्वसमर्थ सबसे बली प्रबल पराक्रमी प्रणत प्रतिपालक प्रभु के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! यह मैंने उत्तर कुरु में पृथ्वी द्वारा वराह भगवान् की की हुई स्तुति का वर्णन किया। अब किंपुरुषवर्ष में जैसे हनुमानजी भगवान रामचन्द्रजी की स्तुति करते हैं उस कथा प्रसङ्ग को आगे कहूँगा, आप सब दत्तचित्त होकर श्रवण करें।

छप्पय

चुम्बक कछु नहिं करत लोह की सन्निधि पावै।
ज्यों आश्रय तैं भ्रमै प्रकृतिकूँ ब्रह्म नचावै॥
उतपति थिति लय प्रकृति करै साक्षी गुन स्वामी।
इन्द्रिय सुर तनु, काल अहं तै पर निष्कामी॥
करि सम मम उद्धार करि, हिरण्याक्ष गज मारि जिनि।
सब समर्थ सरवज्ञ प्रभु, वन्दौं पुनि पुनि चरन तिनि॥

पद

सूकर ! व्यापि रहें जग माहीं ।
घृत पय विन्दु विन्दु में व्यापो, पय विन्दु घृत कछु नाहीं ॥१॥
ज्यों ऋत्विज अरनी कूँ मथिकें, यज्ञ अनल प्रकटाई ।
त्यों पंडित मथि मन अरनीकूँ, व्यापक प्रभुकूँ पाईं ॥२॥
ज्यों लोहो चुम्बक आश्रय तैं, अपने आप भ्रमाई ।
त्यों माया साची लहि तुमकूँ, उतपति लय करवाईं ॥३॥
हिरन्याक्ष हनि मोकूँ लाये, कुमुदिनि गज ज्यों लाई ।
उन वराह के चरनकमल में, वार वार सिर नाईं ॥४॥

भूदेवी कृत वराह स्तुति

ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते ॥१॥

यस्य स्वरूपं कवयो विपश्चितो,
गुणेषु दारुष्विव जातवेदसम् ।
मथ्नन्ति मथ्ना मनसा दिदृक्षवो,
गूढं क्रियार्थैर्नम ईरितात्मने ॥२॥

द्रव्याक्रियाहेत्वयनेशकर्तृभिः,
मायागुणैर्वस्तुनिरीक्षितात्मने ।
अन्वीक्षयाङ्गातिशयात्मबुद्धिभिः,
निरस्तमायाकृतये नमो नमः ॥३॥

करोति विश्वस्थितसंयमोदयं,
यस्येप्सितं नेप्सितमीक्षितुर्गुणैः ।
माया यथायो भ्रमते तदाश्रयं,
ग्राव्णो नमस्ते गुणकर्मसाक्षिणे ॥४॥

प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणंमृधे,
यो मां रसाया जगदादिसूकरः ।
कृत्वाग्रदंष्ट्रे निरगादुदन्वतः,
क्रीडन्निवेभः प्रणतास्मि तं विभुमिति ॥५॥

श्रीहनुमान्‌जी द्वारा श्रीरामभगवान्‌की स्तुति

(३६)

यत् तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकम्,
स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम् ।
प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनम्,
ह्यनाम रूपं निरहं प्रपद्ये ॥❀

(श्रीभा० ५ स्क० १६ अ० ४२ श्लो०)

छप्पय

सुखद वरष किंपुरुष सङ्ग किन्नर लै हनुमत ।
करैं रामकी भक्ति कहैं विनती करि नित नित ॥
रमन ! रम्य ! रघुनाथ ! रहितगुन ! रमिबेवारे ।
शुद्ध सच्चिदानन्द सर्वगत शर धनुधारे ॥
रक्षासुर शिक्षा निमित, मनुज सरिस क्रीड़ा करत ।
हरत विपति अद्भुत चरित, हम तिनि पुनि-पुनि पग परत ॥

नव वर्षों में से एक किंपुरुष वर्ष भी है। उसमें किंपुरुष

❀ किंपुरुष वर्ष में वराह भगवान् की स्तुति करती हुई पृथ्वीदेवी कह रही हैं—"जो भगवान् विशुद्ध हैं, अनुभवगम्य हैं, एक अद्वितीय हैं, अपने निज के प्रकाश से सभी अवस्थाओं की व्यवस्था को ध्वस्त करने वाले हैं, अन्तर्यामी हैं, प्रशान्त हैं विशुद्ध बुद्धि ग्रहण करने योग्य हैं, नामरूप से रहित तथा अहंकार हीन हैं मैं उन प्रभु के प्रपन्न हूँ।"

रहते हैं। वहाँ स्त्री पुरुष प्रायः एक से होते हैं। पुरुषों के भी दाढ़ी मूँछ नहीं होती। दूर से देखने पर कोई व्यक्ति स्त्री पुरुष में भेद भाव नहीं कर सकता। स्त्री या पुरुष को आते देखकर मनुष्य निर्णय नहीं कर सकता कि "किंपुरुषः आहोश्वित स्त्री" यह पुरुष है अथवा स्त्री इसीलिये उन्हें किंपुरुष कहते हैं और उस वर्ष का नाम किंपुरुषवर्ष है। उस वर्ष के इष्टदेव लक्ष्मणाग्रज, जानकी जीवन, आदि पुरुष भगवान् रामचन्द्रजी हैं। वहाँ के समस्त किन्नर किन्नरियों के भक्ताग्रगण्य श्री हनुमानजी उनकी उपासना करते हैं। वहाँ गंधर्व भी निवास करते हैं अतः गन्धर्व प्रवर आर्ष्टिषेण दूसरे गन्धर्वों के सहित साकेतविहारी भगवान् राघवेन्दु के सुललित चरित्रों का गान करते हैं उन्हें सुनकर हनुमान्जी तथा दूसरे किंपुरुष हर्ष में विह्वल होकर गद्गद् हो उठते हैं और स्वयं भी विविध स्तोत्रों से उनकी स्तुति करने लगते हैं वे जिस मंत्र का जप करते हैं, उसका सारांश यह है इस राम मन्त्र का बीज ओंकार है, आगे कहते हैं—"हे ओंकार स्वरूप पुण्य श्लोक परमपावन कीर्तिवाले राघव आपको प्रणाम है, हे सत्पुरुषों के समस्त लक्षणों से युक्त आर्य लक्षणशील व्रत भरताग्रज आपको नमस्कार है। हे प्रभो! आपका चित्त सदा संयत रहता है, आपका जीवन संयम का ज्वलन्त उदाहरण है, उसमें कहीं भी असंयम की गन्ध नहीं ऐसे संयत चित्त वाले सीता सर्वस्व को नमस्कार है। हे सर्वप्रिय! सम्पूर्ण लोक आपकी श्रद्धा भक्ति के सहित उपासना करते हैं। ऐसे उपासकों की एकमात्र गति भगवान् राम को नमस्कार है। हे भगवन्! साधुता एक ऐसी सरल सुगम सहज वस्तु है, कि उसमें अधिकारी अनाधिकारी दम्भी पाखंडी सभी आकर मिल जाते हैं, जैसे सुवर्ण में अन्य कुधातुएँ मिल जाती हैं, जैसे कसौटी सुवर्ण के घिसते ही

बता देती है यह खरा सुवर्ण है यह खोटा है, इसी प्रकार आप साधुवाद की कसौटी हैं। जिसमें आपकी भक्ति है वह साधु है, जो उससे वञ्चित है वह असाधु है, साधुता के द्योतक आप सच्चिदानन्द के चरणों में हमारा वारम्बार नमस्कार है। हे ब्रह्मण्य देव! ब्राह्मण आपको अत्यन्त प्रिय हैं आप केवल गौ और ब्राह्मण की रक्षा के ही निमित्त अवतार धारण करते हैं, ब्राह्मण आपको अपना सर्वस्व मानते हैं और आप ब्राह्मणों को अपना सर्वस्व समझते हैं। ऐसे हे विप्रप्रिय प्रभो! आप को पुनः पुनः प्रणाम है। हे स्वामिन्! आप राजाओं के भी राजा महाराजाधिराज हैं, आप महापुरुष हैं आपके चरण कमलों में वारम्बार नमस्कार है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार मन्त्र जाप के अनन्तर वे इस प्रकार स्तुति करते हैं। हनुमान् जी कहते हैं—"प्रभो! आप परम पवित्र हैं पावनों से भी अधिक पावन हैं, अमल विमल तथा निर्मल हैं, परम विशुद्ध स्वरूप हैं। कोई माया मोहित प्राणी इन चर्मचक्षुओं से आपको देखना चाहे, तो यह असंभव बात है आप एकमात्र सूक्ष्म से भी सूक्ष्म बुद्धि द्वारा केवल अनुभव से ही जाने जा सकते हैं। आप में स्वजातीय परजातीय नामत्व भेदभाव नहीं आप केवल अद्वय एक अद्वितीय हैं। जीव की जाग्रति, स्वप्न सुषुप्ति ये तीन अवस्थायें बतायी हैं आप अपने स्वरूप के प्रकाश से अपनी महती महिमा के तेज से जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति इन सभी अवस्थाओं का तिरस्कार करने वाले हैं आप के स्वभाव के सम्मुख ये सभी गुण सभी अवस्थायें हतप्रभ हो जाती हैं। आप घट-घट व्यापी हैं, सर्वत्र समान रूप से व्याप्त हैं, सभी जीवों के अन्तर्यामी हैं। आप में चंचलता नहीं, उद्विग्नता नहीं, अस्थिरता नहीं, आप परम शान्त

दान्त तथा महान्त हैं। आप निर्मल विशुद्ध बुद्धि द्वारा ग्रहण किये जाने योग्य हैं। संसार में असंख्यों नाम हैं, असंख्यों रूप हैं किन्तु कोई भी नाम रूप वाला व्यक्ति आपकी समता को प्राप्त नहीं कर सकता कारण कि आप नाम रूप से रहित हैं। देवता, असुर, लोकपाल तथा मनुष्य आदि सभी को अपने-अपने पद का अहंकार होता है, किन्तु प्रभो ! आप श्रेष्ठसे श्रेष्ठ पदपर प्रतिष्ठित होने पर भी निरहंकार हैं। अहंकार से सर्वथा रहित हैं। ऐसे सर्व समर्थ सर्वेश्वर श्रीराम के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है। उन सच्चिदानन्द लक्ष्मणाग्रज के चरणों की हम शरण में हैं।

हे लोकशिक्षक ! कुछ चल बुद्धि वाले व्यक्ति समझते हैं आपने अजेय रावण के वध के निमित्त ही अवतार लिया था। मानव तनु धारण किया था यह उनका भ्रम है, रावण आदि ऐसे असंख्यों असुर आपकी भृकुटि विलासमात्र से पल भर में नष्ट हो सकते हैं असुर विनाश तो आपके अवतार का अत्यन्त गौण प्रासंगिक प्रयोजन है आप तो प्राणियों को सच्ची सीख सिखाने के लिये सत्शिक्षा प्रदान करने के निमित्त स्वधाम से अवतरित होते हैं। सर्वेश्वर तथा सर्व समर्थ होने पर भी जो आपने श्रीसीता वियोग में इतना प्रलाप किया इतना सहन किया यह सब आप की लीला है, आप तो आप्त काम हैं आपको रमण करने के निमित्त लीला करने के लिये, वाह्य उपकरणों की सर्वथा अपेक्षा नहीं क्योंकि आपतो अपनी ही आत्मामें रमण करने से आत्माराम हैं, फिर भी श्रीसीता के हरण पर आपने इतना भारी प्रलाप किया था, इतने रोये थे इतना दुःख अनुभव किया था, यह आप की मर्त्य विडम्बना ही थी। कामियों को शिक्षा देनी थी। नहीं तो भला आपको क्या शोक मोह तथा दुःख होना था। आप तो

प्रभो ! आप धीरपुरुषोंकी आत्मा हैं। आत्मा तो आप सभीके हैं, किन्तु उसका अनुभव तो आत्म ज्ञानी धीर वीर गम्भीर पुरुष ही करते हैं, वे ही अपनी आत्मा का अनुभव करके सन्तुष्ट होते हैं, इसी से आप आत्मवतों की आत्मा कहलाते हैं, आप आत्मारामों के सुहृद् हैं, सुहृद तो आप सम्पूर्ण संसार के हैं, सभी प्राणियों के हैं, किन्तु आत्माज्ञानी इसका साक्षात्कार करते हैं। आप वासुदेव हैं, आपकी वासना तीनों भुवनों में व्याप्त है, आप सम्पूर्ण चराचर में बसते हैं, आप अनासक्त हैं, किसी भी वस्तु में आपकी असक्ति नहीं। दुःख होता है असक्ति के कारण। जब आप में असक्ति ही नहीं तो आपको दुःख कैसे हो सकता है कुछ कहते हैं सीता जी आपकी प्रिया थीं उनके वियोग के कारण आप अत्यन्त दुखी हो गये, लक्ष्मण जी आपके बाह्य प्राण ही थे उनका जब आपको त्यागकरना पड़ा तो आपको महान् क्लेश हुआ आपने भी दुखी होकर उनके पथ का अनुसरण किया। यह अज्ञानियों का मत है, त्याग और वियोग तो बाहरी वस्तुओं में होता है आप तो सब की आत्मा हैं, आप में त्याग, ग्रहण, शोक मोह बनता ही नहीं।

प्रभो ! आप सबके सुहृद् हैं, आप को अकिंचन भी प्राप्त कर सकते हैं। कुछ लोगों का कथन है आपको उत्तम कुल में उत्पन्न कुलीन ही प्राप्त कर सकते हैं, उन्हीं की उपासना से आप सन्तुष्ट हो सकते हैं। यदि ऐसी ही बात होती, तो आप अजामिल, गीध व्याध तथा केवट आदि पर कृपा क्यों करते, इससे सिद्ध हुआ आपकी प्रसन्नता में कुलीनता कारण नहीं है यदि आप सुन्दरता से ही प्रसन्न होने वाले होते तो जितने सुन्दर नर नारी हैं, वे सभी आप को प्राप्त कर लेते, किन्तु देखते हैं सुन्दरी से

सुन्दरी स्त्री मनोहर से मनोहर पुरुष आपको बिना प्राप्त किये रह जाते हैं, और कुब्जा आदि कुरूपा भी आपको प्राप्त कर लेती हैं, अतः सुन्दरता भी आपकी प्रसन्नता में हेतु नहीं। कुछ लोग कहते हैं आप वाक् चातुरी से प्रसन्न होते हैं, सो यह भी बात नहीं। ध्रुवजी तो पाँच वर्ष के बालक ही थे, भली भाँति बोलना भी नहीं जानते थे, उन पर आप प्रसन्न हो गये और बड़े बड़े तार्किकों के आस पास भी नहीं भटकते इससे सिद्ध हुआ वाक् चातुरी आपको प्राप्त करने में कारण नहीं। कुछ लोग कहते हैं आप बुद्धिमानों को ही प्राप्त होते हैं। गज में कौन सी बुद्धि थी, उसने सूँड़ में कमल लेकर केवल आप को आर्त होकर सरलता से पुकारा ही था उसी पर प्रसन्न हो गये, इसके विपरीत बड़े बड़े विद्वान् आपके प्रेम से वंचित रह जाते हैं, अतः बुद्धि भी आपकी प्राप्ति में कारण नहीं। कोई कहे आप अच्छी आकृति पर प्रसन्न होते हैं। गरुड़, गीध गज आदि पशुपक्षियों पर आप प्रसन्न क्यों होते। औरों की बात छोड़ दें हम वानर भालुओं में इनमें से एक भी बात नहीं थी न हमारा जन्म ही उत्तम कुल में हुआ है। न हम देखने में ही सुन्दर हैं, न बोलने की ही हममें शक्ति है न बुद्धिमान् ही हैं न हमारी आकृति ही अच्छी है स्वभाव भी चञ्चल है। इतना सब होते हुये भी मानो यही दिखाने के निमित्त कि हम प्रेम करने में इनगुणों की अपेक्षा नहीं रखते। आप लक्ष्मणजी के अग्रज रघुकुल तिलक ने हमारे ऊपर केवल कृपा नहीं की हमें अपना मित्र सुहृद् मानकर अपनाया अपने सगे भाई भरत से भी अधिक प्रेम हम पर दरसाया।

अतः प्रभो ! हम तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं, कि चाहे कोई देवता हो, असुर राक्षस हो, मनुष्य हो उसे आप उत्तम गुण वाले पुण्य श्लोक परब्रह्म श्रीराम को ही भजना चाहिये। आप उत्तम श्लोक राघव की ही उपासना करना चाहिये। आप तो कृपा के सागर हैं,सच्चे सुहृद् हैं, शरणागतवत्सल हैं,तभी तो निजधाम पधारते समय आप सम्पूर्ण कोशलवासी नर-नारी, पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग, यावन्मात्र जीव थे, सभी को अपने साथ विमान पर बिठाकर अपने लोक को ले गये। ऐसे परम कृपालु दयासागर शरणागतवत्सल श्रीराम को छोड़कर जो अन्य देवों की उपासना करते हैं, वे माया द्वारा ठगे गये हैं। अतः सभी को सर्वात्मना भाव से सीता सर्वस्व भगवान् कोशलेन्द्र की उपासना करनी चाहिये।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! यह मैंने किंपुरुष वर्ष में श्री हनुमान् जी द्वारा की हुई श्रीरामजी की स्तुति कही अब मैं आप से भारतवर्ष में श्रीनारद जी द्वारा की गयी श्रीनरनारायण भगवान् की स्तुति को कहूँगा आप सब सावधान होकर श्रवण करें।

छप्पय

नहिँ रावन वध हेतु न सिय उद्धार करन हित।
भये अवतरित प्रभो ! नहीं आसक्त जगत हित॥
आवश्यक नहिँ जनम,रूप कुल तुमहिं रिझावन।
कपिसन मैत्री करी नाथ ! यह बात दिखावन॥
सुरवर नर बानर असुर, भजहु राम रघुनाथ नित।
पुरवासिनि लै धाम निज, गये अन्त तिनि देउ चित॥

पद

सब मिलि भजहु राम रघुनायक ।
पावन परम अलख अद्वय अज, अन्तरयामी पालक ॥१॥
रावन बध हित ही नहिं प्रकटे, राम धरम संस्थापक ।
माया मोह रहित रघुनन्दन, गुन गुन गावें गायक ॥२॥
जनम, रूप धो तिनि पावन हित, अधिक न होहिं सहायक ।
करी कपिन सँग मैत्री सियपति, करे समर सब नायक ॥३॥
अति कृतज्ञ अति मनहर रघुबर, धरे धनुष कर सायक ।
भजहु सतत तिनि सिय सरबसुकूँ, विनय करे प्रभु पायक ॥४॥

हनुमत्कृत श्रीराम स्तुति

ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकष णाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति ॥१॥

यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकं,
स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम् ।
प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं,
ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये ॥२॥

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं,
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः ।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः,
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥३॥

न वै स आत्माऽऽत्मवतां सुहृत्तमः,
सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान् वासुदेवः ।
न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत,
न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति ॥४॥

न जन्म नूनं महतो न सौभगं,
न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ।
तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकसः,
चकार सख्ये वत लक्ष्मणाग्रजः ।।५।।
सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नरः,
सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् ।
भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं,
य उत्तराननयत्कोसलान्दिवमिति ।।६।।

नारदजी कृत नरनारायण स्तुति

[४०]

कर्तास्य सर्गादिषु यो न बध्यते,
न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः ।
द्रष्टुर्न दृग्यस्य गुणैर्विदूष्यते,
तस्मै नमोऽसक्तविविक्तसाक्षिणे ॥*

(श्रीमा० ५ स्क० १९ अ० १२ श्लो०)

छप्पय

नर नारायन करें विनय नारद भारत महँ ।
कहें-जगत् रचि पालि बँधे नहिं प्रभु बन्धनमहँ ॥
दृश्य दोषतें रहित रहें तन धरम न व्यापै ।
हैं निरमल निःसङ्ग निरञ्जन धरमहिं थापैं ॥
चतुरनि चतुराई जिही, सब तजि चितवन चरन महँ ।
देहिं त्यागि सरवसु सतत, रहें तुम्हारी शरन महँ ॥

नव द्वीपों में हमारा यह भारतवर्ष है। इसके इष्टदेव भगवान् नरनारायण हैं। जो कल्प पर्यन्त बदरीवन में रहकर

---

* नारदजी नरनारायण भगवान् की स्तुति करते हुए कह रहे हैं—हे प्रभो ! यद्यपि आप इस संसार की उत्पत्ति आदिके कर्ता हैं, फिर भी कर्तापने के अभिमान से बँधते नहीं। यद्यपि आप देह में रहते हैं

घोर तपस्या करते रहते हैं। लोक संग्रह के लिये धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य पथा उपशम की वृद्धि हो सम्पूर्ण संसार का कल्याण हो और इन साधनों द्वारा अन्तमें भगवत् प्राप्ति हो इसी भावना से भगवान् ऋषि कुमारों का रूप रखकर तपस्या करते हैं। इस वर्ष के इष्टदेव के प्रधान अर्चक भगवान् नारदजी हैं। तीनों युगों में तो देवता मनुष्य सब मिलकर भगवान्की उपासना किया करते हैं किन्तु कलियुग में देवताओं और मनुष्यों के समय का बँटवारा हो जाता है। मार्गशीर्ष से वैशाख पर्यन्त तो देवता पूजा करते हैं उनके अर्चक नारदजी होते हैं और वैशाख से कार्तिक तक भारत वर्ष की वर्णाश्रम धर्म मानने वाली प्रजा पूजा करती है, उस समय नारदजी के प्रतिनिधि एक रावल पूजा करते हैं। इसीलिये भारतवर्ष में जन्म लेकर सभी नर नारियों को एक बार श्री बदरी वन में जाकर भगवान् नर नारायण के दर्शन अवश्य करना चाहिये। अव्यक्तगति से गुप्त रहते हैं वहाँ केवल उनके अर्चाविग्रहका ही दर्शन होता है किसी किसी भाग्यशाली को उनके प्रत्यक्ष दर्शन भी हो जाते हैं। आत्मनिष्ठ पुरुषों पर गुप्त रूप से नर नारायण भगवान् ही कृपा करते हैं। उन्हीं के तप के प्रभाव से लोगों को भगवत् साक्षात्कार होता है। भगवान् नारद पांच रात्रविधि का सावर्णि मनुको उपदेश करते हैं और उसी पांच रात्र विधि से भगवान् की पूजा भी करते हैं।

सूतजी कहते हैं—मुनियो! वर्णाश्रमव्रती प्रजाके सहित नारद जी पहिले जिस मंत्रका जप करते हैं उसका भावार्थ इस प्रकार है। इस मंत्र का बीज ओंकार है। ओंकार स्वरूप भगवान्को नमस्कार

फिर भी देह धर्मों के वशीभूत नहीं होते, यद्यपि आप द्रष्टा हैं, फिर भी इस दृश्य के दोषों से दूषित नहीं होते, ऐसे आप निर्मल, निस्संग और सर्वसाक्षी सर्वेश्वर को बारम्बार नमस्कार है।

हैं। जो भगवान् उपशम शील हैं शान्त स्वभाववाले हैं। हे प्रभो! आप अनात्म्य भाव से रहित हैं अर्थात् आत्मस्वरूप हैं आपके लिये वारम्वार नमस्कार है। हे भगवन्! आप निर्धनों के धन हैं अकिंचनों के वित्त हैं आपको नमस्कार है। आप समस्त ऋषियों में ऋषभ हैं समस्त तपस्वी मुनियों में श्रेष्ठ हैं आपके पादपद्मों में प्रणाम है। स्वामिन्! आपने जगत् के कल्याण के निमित्त नर नारायण के रूप बना रखे हैं। ऐसे बदरी वनवासी नरनारायण मुनियों को वारम्वार प्रणाम है। हे देव! आप परिव्राजक परम हंसोंके परम गुरु हैं तथा आत्माराम आप्तकाम मुनियों के अधीश्वर हैं आपको वारम्वार नमस्कार है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! इस प्रकार मन्त्र जापके अनन्तर नारदजी स्तुति करते हुए कहते हैं—"हे प्रभो! संसार में प्राणी कर्तृत्व अभिमान के कारण ही बन्धन को प्राप्त होता है। यह मैंने किया मैं इसका कर्ता भोक्ता हूँ इसी अभिनिवेश के कारण उसकी शक्ति केन्द्रित हो जाती है किन्तु आप इस इतने बड़े ब्रह्माण्ड को पल भर में बनाते हैं बनाकर सबका पालन करते हैं और अन्त में संहार भी स्वयं कर देते हैं। यही नहीं ऐसे अगनित ब्रह्माण्ड आप निरन्तर रचते रहते हैं आप कर्ता पालक संहर्ता सभी कुछ हैं यह भी नहीं कि आप अनेकों की सहायता लेकर बनाते हों आप अकेले ही सब कुछ बनाते हैं। इतना सब होने पर भी आप कर्तृत्व दोष से सर्वथा रहित हैं आपको कर्तापने का अभिमान है ही नहीं।

शरीर में जो रहता है उसे क्षुधा पिपासा सुख दुख जरा मरण तथा शरीर सम्बन्धी अन्य धर्मों के अधीन रहना ही पड़ता है किन्तु आप में इतनी विलक्षणता है कि शरीर में रहते हुए

भी आप उसके धर्मों से सर्वथा पृथक् हैं। शरीर धर्म आपको कभी नहीं व्यापते उनके वशीभूत आप कभी होते ही नहीं।

द्रष्टा जब कभी किसी दृश्य को देखता है तो दृश्य की प्रियता अप्रियता मनोहरता बीभत्सता के कारण उसके मन में हर्ष शोक सुख दुख अनुकूल प्रतिकूल भाव आ ही जाते हैं किन्तु आप इस सम्पूर्ण जगत् के द्रष्टा हैं। आप सभी विश्व को सम्पूर्ण चराचर को उसी प्रकार देखते हैं जैसे हाथ में रखे आँवले को देखते हैं इतना सब होने पर भी आपकी दृष्टि दृश्य के दोषों से दूषित नहीं रहती। हे प्रभो! आपका इस जगत से न जाने कब से सम्बन्ध है फिर भी आप सदा निःसंग बने रहते हैं मानों जगत से आपका कभी कोई सम्बन्ध ही नहीं। हे भगवन्! संसार से सम्बन्ध होने पर कुछ न कुछ तो मल तो लग ही जाता है। काजर की कोठरी पर जाने एक दो रेखा काजर की लग ही जाती हैं। किन्तु आप इस प्रपंचके भीतर रहते हुए भी सर्वथा शुद्ध बुद्ध निर्मल बने रहते हैं। हे देव! आपही चर अचर सबके एकमात्र साक्षी हैं। ऐसे सर्वसाक्षी सच्चिदानन्द स्वरूप आप प्रभु के पादपद्मों में पुनः-पुनः प्रणाम है।

हे स्वामिन्! हे योगेश्वरों के भी ईश्वर भगवन्! संसार में भाँति भाँति की चतुराई बताई है। कोई धन उपार्जन करने में चतुर होते हैं कोई विद्या प्राप्त करने में दक्ष होते हैं कोई विविध भाँति की कलाओं में संगीत साहित्य में प्रवीण होते हैं किन्तु हिरण्य गर्भ भगवान् ब्रह्माजी इन चतुरताओं को यथार्थ चतुरता नहीं मानते। बहुत से लोग योग सिद्धि करके उसके द्वारा अणिमा, गरिमा, लघिमा तथा अन्यान्य सिद्धियों से बहुत से

अद्भुत अद्भुत चमत्कार दिखा देते हैं। ब्रह्माजी उसे भी महत्व नहीं देते। वे योग मार्ग की सबसे बड़ी चतुरता उत्तम से उत्तम प्रवीण या सर्वोत्कृष्ट दक्षता इसी को मानते है कि अन्त काल में मरण समय में इस मिथ्या देहाभिमान को परित्याग करके श्रद्धा भक्ति पूर्वक आप निर्गुण निष्क्रिय निरंजन सच्चिदानन्द परमात्मा में चित्त लग जाय। जिसका चित्त मृत्यु काल में आपके चरणों में लग जाय वही सबसे श्रेष्ठ है वही परम प्रवीण है वही चतुरों से भी अधिक चतुर है और वही यथार्थ दक्ष है।

इसके विपरीत जिनकी इस नश्वर शरीर में आसक्ति है। इसी को आत्मा मानकर इसी के पालन पोषण में रत रहते हैं। इसी को सुन्दर स्वस्थ स्वच्छ और निरोग बनाने के निमित्त निरन्तर प्रयत्न शील बने रहते हैं। शरीर से सम्बन्ध रखने वाले पुत्र कलत्र, धन, जन, सगे सम्बन्धी भवन वाहन तथा अन्यान्य वस्तुओं में ममता करके उनकी चिन्ता में निमग्न रहते हैं जैसे मूढ़ पुरुष निरन्तर मृत्यु से भयभीत बने रहते हैं उसी प्रकार मृत्यु के नाम से डर जाते हैं।जो संज्ञ इन्द्रिय भोग सम्बन्धी लौकिक सुखों के लिये तथा अप्सरा नन्दनकानन अमृत पान आदि पारलौकिक सुखों के लिये लालायित बने रहते हैं।यह शरीर छूट न जाय कहीं मृत्यु न आ जाय। इसके लिये सदा शंकित बनेरहते हैं वे चाहें कितनेभी बड़े विद्वान् क्यों न हों कैसे भी बड़े शास्त्रज्ञ क्यों न हो उन्होंने चाहें जितनी विद्या प्राप्त की हो शास्त्रों में कितना भारी श्रम क्यों

न किया हो उनका सब किया कराया प्रयत्न व्यर्थ है। क्योंकि समस्त शास्त्रों का सार सिद्धान्त तो यही है कि मृत्यु समय मन आपके चरणारविन्दों में लगा रहे. जिसने ऐसा किया है उसका शास्त्रश्रम तो सार्थक है नहीं तो सभी नर व्यर्थ हैं।

हे नाथ ! हमें तो आप अपनी भक्ति प्रदान करें ! हे अशरण-शरण ! हमें आप अपनी शरण में ले लें। हे प्रेमार्णव ! हमें आप सहजा स्वाभाविकी अनुरक्ति दें। हे प्रेमास्पद ! हमें प्रेम प्रदान करें। प्रभो ! हमारी अपनी शक्ति नहीं कि इस माया के दुर्भेद्य किले को अपनी सामर्थ्य से अपने बल पराक्रम से जीत सकें। यह सब तो आपकी कृपा पर ही अवलम्बित है। माया ने हमें अपने वश में कर लिया है। आपकी ही गुणमयी इस दैवी दुरत्यय माया ने हमें ठग लिया है। इसीके वशीभूत होकर नित्य नौ द्वारों से मल बहने वाले विष्ठा मूत्र के आलय इस निंद्य शरीर में हमने अहंता स्थापित कर रखी है। इसी के सम्बन्ध से धन भवन पुत्र कलत्र आदि अनित्य पदार्थों में प्रगाढ़ ममता बना रखी है आप ही कृपा करें तब यह अहंता ममता मिट सकती है। आप की ही कृपा से इस दुर्भेद्य किले का भेदन हो सकता है मेरे जीवन सर्वस्व ! हे हमारे दुःख त्राता ! हे भाग्य विधाता ! हे सर्व सुख दाता ! हमारी अहंता ममता को मेट दो यह जो माया की जंजीर हमारे पैरों में पड़ी है इसे काट दो।

सूतजी कहते हैं—मुनियो ! यह मैंने नारदजी द्वारा की हुई नारायण भगवान् की स्तुति कही। अब आप दक्षप्रजापति द्वारा किये हुए भगवान् के हंसगुह्य स्तोत्र को श्रवण करें।

छप्पय

जे कलत्र धन पुत्र मित्रमहँ ममता करिहैं।
इह परम सुख भोग लोभ करि करि ते मरिहैं ॥
तिनि को जीवन ज्ञान शास्त्र सब व्यरथ बतावें।
पुनि पुनि जीवें मरें अन्त में अति पछितावें ॥
स्वाभाविक निज प्रेम प्रभु, भक्ति सहित देवें हमें।
तजि ममता अरु अहंता, मायापति पावें तुम्हें ॥

पद

जगमें तेई चतुर कहावें।
अन्तकाल में तजि तनु ममता, पुण्य परमपद पावें ॥१॥
मैं मेरी माया बिसरावें, चित तव चरन लगावें।
याह्यो जथारथ फल जीवन को, सुर मुनि तिनहिं सरावें ॥२॥
जे भोगनिके बने लालची, धन कलत्र मन लावें।
तिनिको व्यरथ शास्त्र श्रम साधन, कर मलि मलि पछितावें ॥३॥
करें प्रदान प्रेम प्रभु पावन, तब माया तरि जावें।
तजि तन मोह चरन लपटावें,बार बार सिर नावें ॥४॥

नारदकृत नारायण स्तुति

ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिञ्चन वित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नम इति ॥१॥ गायति चेदम्—

कर्तास्य सर्गादिषु यो न बध्यते,
न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः ।
द्रष्टुर्न दृग्यस्य गुणैर्विदूष्यते,
तस्मै नमोऽसक्तविविक्तसाक्षिणे ॥२॥

इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं,
हिरण्यगर्भो भगवान् जगाद यत् ।
यदन्तकाले त्वयि निर्गुणे मनो,
भक्त्या दधीतोज्झितदुष्कलेवरः ॥३॥

यथैहिकामुष्मिककामलम्पटः,
सुतेषु दारेषु धनेषु चिन्तयन् ।

शंकेत विद्वान् कुकलेवरात्ययाद्,
यस्तस्य यत्नः श्रम एव केवलम् ॥४॥
तन्नः प्रभो त्वं कुकलेवरार्पितां,
त्वन्माययाहंममतामधोक्षज ।
भिन्द्याम येनाशु वयं सुदुर्भिदां,
विधेहि योगं त्वयि नः स्वभावमिति ॥५॥

दक्ष प्रजापति कृत भगवान्का हंसगुह्य स्तोत्र (१)

(४१)

नमः परायावितथानुभूतये,
गुणत्रयाभासनिमित्तबन्धवे ।
अदृष्टधाम्ने गुणतत्वबुद्धिभि—
र्निवृत्तमानाय दधे स्वयं भुवे ॥*
(श्रीभा० ६ स्क० ४ अ० २३ श्लो०)

छप्पय

प्रजा वृद्धि के हेतु दक्ष तप करन तीर्थवर ।
अघमरषन महँ गये विन्ध्य गिरिवर जहँ मनहर ॥
हंसगुह्य इस्तोत्र पाठ करि प्रभुहिँ रिझावैं ।
है अति गद्‌गद गिरा प्रेमतें प्रतिदिन गावैं ॥
कहें—सच्चिदानन्द विभु, पाँइ न जिनहिँ प्रमान हैं ।
जिनि विषयी नर नहिँ लखहिँ, पुनिपुनि तिनहिँ प्रनाम हैं ॥

महाराज प्राचीनबर्हि के दश प्रचेता नाम से पुत्र हुए। ये रूप, शील, वय, स्वभाव व्यवहार आदिमें समान ही थे, अतः

---

* दक्ष प्रजापति भगवान् की स्तुति करते हुए कहते हैं—"प्रभो! आपका ज्ञान यथार्थ है, आप पर से भी परे हैं, आप तीनों गुणों के आभास निमित्त जीव तथा माया के बन्धु हैं, गुण विषयों में यथार्थ बुद्धि

दशों का नाम प्रचेता पड़ा। उन्होंने समुद्र में खड़े होकर घोर तप किया। भगवत् आज्ञा से उन सबने वार्क्षी नाम की कन्या से विवाह किया। उसीके गर्भ से महादेवजी के शाप से जिन दक्ष प्रजापति का देहान्त हो गया था। वे ही यहाँ उत्पन्न हुए। यहाँ भी उनका नाम दक्ष ही पड़ा इस कल्प में भी इन्होंने प्रजा की बहुत वृद्धि की। पहिले उन्होंने मानसिक ही सृष्टि की किन्तु इससे प्रजा सर्ग बढ़ा नहीं सृष्टि की वृद्धि हुई नहीं। तब इन्होंने विन्ध्याचल की तलहटी में अघमर्षण नामक तीर्थ में जाकर प्रजा की वृद्धि के निमित्त घोर तपस्या की। वहाँ पर ये नित्य तीनों समय अघमर्षण तीर्थ में स्नान करके हंस गुह्य नाम के स्तोत्र का पाठ करते थे। इसके पाठ से भगवान् श्रीहरि प्रसन्न हुए और इनकी मनोकामना पूर्ण हुई।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जिस हंस गुह्य स्तोत्र के पाठ से दक्ष प्रजापति ने सिद्धि लाभ की उस स्तोत्र को मैं आपको सुनाता हूँ। आप सब दत्त चित्त से श्रवण करें।

दक्ष कहते हैं —"हे प्रभो! आप परात्पर हैं। आपसे परे कोई नहीं है। जैसे शब्दादि विषयों से परे इन्द्रियाँ है, इन्द्रियों से परे मन है, मन से परे अहं तत्व है, अहं तत्व से परे महत्तत्त्व है, महत्तत्वसे परे प्रकृति है, प्रकृति से परे पुरुष है पुरुषसे भी परे आप पुरुषोत्तम हैं। अब कोई पूछे आप पुरुषोत्तम से परे कौन है तो कोई कुछ कह नहीं सकता। आप तो परा की काष्ठा हो अन्तिम सीढ़ी हो आपके समीप पहुँच कर परे की शृंखला समाप्त

रखने वाले पुरुष आपके स्वरूप को नहीं जानते, आप सब परिणामों से रहित हैं, ऐसे आप स्वयं प्रकाश परमात्मा के प्रति मैं नमस्कार करता हूँ।"

हो जाती है सबसे परे आप ही हैं। ऐसे परतत्व स्वरूप आपको नमस्कार है।

संसार में देखा जाता है कि किसी की अनुभूति सत्य होती है किसी की असत्य किन्तु आप तो अवितथ अनुभूति वाले हैं। आपकी अनुभूति त्रिकाल में भी असत्य तथा भ्रमयुक्त नहीं हो सकती। संसार में यथार्थ ज्ञान तो एकमात्र आपमें ही है। इसीलिये तो आप ज्ञान स्वरूप हैं, परिपूर्ण हैं ब्रह्म हैं। सत्व रज और तम इन तीनों गुणों के आभास निमित्त जो जीव और माया है उनके आप बन्धु हैं अर्थात् स्वामी हैं नियन्ता हैं। जैसे छोटे २ बालकों के बन्धु नियन्ता पालन कर्ता माता पिता हैं, जैसे नेत्रों के रक्षकबन्धु पलक हैं, जैसे स्त्री का रक्षक पति है, जैसे भिक्षुकों का रक्षक गृहस्थ है, जैसे अज्ञानियों के बन्धु ज्ञान वान् हैं, जैसे प्रजाओं के बन्धु राजा है उसी प्रकार आप जीव माया के बन्धु हैं। ईश हैं नियामक हैं जो लोग गुणों में तत्व बुद्धि रखते हैं गुणों को ही सब कुछ समझते हैं जो कहते हैं कि ये गुण ही परस्पर में गुणों में वरत रहे हैं ऐसे लोग आपकी महिमा को आपके यथार्थ स्वरूप को नहीं जानते हैं। आपको प्रमाणों द्वारा सिद्ध करना चाहें तो नहीं कर सकता क्योंकि प्रमाण की तो वहाँ पहुँच ही नहीं। आप सभी प्रकार के परिमाण से रहित हैं। आपकी कोई नाप जोख नहीं कर सकता। आप इतने हैं आपकी महिमा इतनी ही है इसे कोई बता ही नहीं सकता। आप सबके जनक हैं आपका कोई जनक नहीं। आप स्वयम्भू हैं। स्वयंभू कहना भी उचित नहीं आप शुद्ध सनातन एक रस रहने वाले नित्य शुद्ध बुद्ध तथा शाश्वत हैं। ऐसे आप सर्वोत्तम सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

हे प्रभो ! रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा शब्द को व्यक्त करने वाली चक्षु, रसना, घ्राण त्वक् तथा चक्षु इन्द्रियों में प्रकाशकपन न हो ये प्रकाश प्रदान न करें तो विषयों की प्रतीति न होगी इतनी आवश्यक इन्द्रियों को जैसे उनके विषय नहीं जानते । दोनों का सम्बन्ध है इन्द्रियों से विषय प्रकाशित होते हैं तथा विषयों की प्रतीति इन्द्रियों द्वारा होती है तिस पर भी विषय इन्द्रियों के प्रकाशक पने के ज्ञान से अनभिज्ञ ही रहते हैं । इसी प्रकार इस शरीर में जीव के साथ सखा रूप से आप सदा निवास करते हैं । आपके बिना न इस शरीर रूप पुर की न इसमें सोने वाले पुरुष की कोई सत्ता ही नहीं । आप इसके साथ-साथ सखा भाव से सोते रहते हैं निवास करते हैं किन्तु यह मूढ़मति जीव आपको जानता नहीं पहचानता नहीं । इतने समीप रहने पर भी आप से परिचय प्राप्त नहीं कर सका । यह इसका अहंकार ही तो है । जैसे एक घर में साथ ही साथ रहने वाले किरायेदार से अहंकारी बोलता भी नहीं । उससे कभी आँख नहीं मिलाता । परिचय प्राप्त नहीं करता । उसी प्रकार अति निकट होने पर यह पुरुष आप प्रभु से पराङ् मुख हो रहा है । आप विश्व के साक्षी हैं ईश्वरों के भी महेश्वर हैं । आप इस दृश्य प्रपंच के एकमात्र साक्षी हैं ऐसे आप सर्व प्रकाशक प्रभु के पादपद्मों में प्रणाम है ।

स्वामिन् ! आपका आदि नहीं अन्त नहीं । देखिये कैसी आश्चर्य की बात है । प्राण देह में ही रहते हैं । देह के बिना प्राणों का अस्तित्व ही नहीं, फिर भी देह प्राणों से अपरिचित है । इन्द्रियाँ प्राणों की प्रेरणा से कुछ करती कराती हैं फिर भी प्राणों को नहीं जानती । अन्तःकरण अर्थात् भीतरी इन्द्रियों के द्वारा ही इस देह संघात का कार्य चल रहा है किन्तु इन्द्रियाँ अन्तः-

करण ये सब भूतों के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते। पंचभूतों के द्वारा ही इस देह संघात का कार्य चल रहा है। पंचभूतों का शब्द रूप, रस, गन्ध और स्पर्श इन पञ्च तन्मात्राओं के साथ कैसा घनिष्ट सम्बन्ध है। फिर भी तन्मात्रायें भूतों के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानतीं। इन्द्रियाँ अपने अधिष्ठातृ देवों के सम्बन्ध में भी कुछ परिचय नहीं रखतीं। और की तो बात ही क्या ये सब जड़ होने के कारण अपने आपको भी नहीं जानते। न अपने से परिचित हैं न अपने कारण से परिचित हैं। किन्तु चैतन्य होने से जीव इन सबको भी जानता है और इनके कारणों को भी जानता है, किन्तु इन सब को जानने वाला यह जीव भी आप सर्वज्ञ के विषय में अनाभिज्ञ ही बना बैठा है आपके विषय में कुछ नहीं जानता ऐसे अत्यन्त रहस्यमय अनादि अनन्त सर्वज्ञ सर्वविद् की मैं स्तुति करता हूँ आपके लिये बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

हे प्रभो! चित्त में जब विषय लालसायें भरी रहती हैं। तब विषय भोगों के निन्तर चिन्तन से मन मलिन हो जाता है अन्तःकरण अपवित्र हो उठता है। तब मन इस नाम रूपात्मक जगत् को ही देखता है जगत् के घट पटादि का ही अव बोधन करता है। चक्षु द्वारा मन ही नाम रूपात्मक वस्तुओं को देखता है तथा त्वचा द्वारा वही स्पर्श का अनुभव भी करता है जिस काल में मन इस दृश्य प्रपंच का दर्शन तथा देखे सुने हुए पदार्थों का स्मरण करना बन्द कर देता है। उस समय मनकी समाधि हो जाती है मन क्रिया शून्य हो जाता है केवल स्वरूप स्थिति से विशुद्ध मन आप को प्राप्त करता है। शुद्ध चित्त ही आपका उपलब्धि स्थान है। ऐसे आप समाधि द्वारा अनुभव किये जाने वाले शुद्ध स्वरूप सर्वात्मा प्रभु को बारम्बार नमस्कार

है। हे प्रभो ! हम वाणी द्वारा आपको व्यक्त नहीं कर सकते। आप तो पवित्र अन्तःकरण में केवल अनुभव ही किये जा सकते हैं। ऐसे परमात्मा के पादपद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! यह मैंने हंसगुह्य स्तोत्र के कुछ अंश का भावार्थ बताया अब तनिक विश्राम करके आगे का भी अर्थ कहूँगा।

छप्पय

विषय प्रकाशक करन विषय तिनिकूँ नहिं जानें।
प्रभु तन महँ सँग जीव तिनि नहिं पहिचानें॥
जाने नहिं निज रूप करम गुन कारन जो हैं।
जाने सबकूँ जीव शीवतैं विज्ञ न सो हैं॥
मन समाधि में नाम अरु, रूप त्यागि जिनि अनुभवें।
तिनि विशुद्ध चित प्राप्य प्रभु, चरनकमलमहँ हम नवें॥

पद

बन्दौं बार बार विभु व्यापक।
सतचित आनँद रूप परावर, बल अमोघ प्रतिपालक ॥१॥
माया जीव नियन्ता नायक, करता करमहु कारक।
तरक तहाँ तक पहुँचि न पावें, तत्व परम प्रभु तारक ॥२॥
जड़ हैं अन्तःकरन करन, तन, प्रान भूत सुरनायक।
अनभिज्ञ जीव सब जाने, किन्तु न जानें पालक ॥३॥
दरसन सुमिरन नाम रूप मन, तजि समाज में बाधक।
शुद्ध चित्त ही जिनकूँ पावें, विनवौं विश्व विधायक ॥४॥

हंसगुह्य—स्तोत्र (२)

(४२)

मनीषिणोऽन्तर्हृदि सन्निवेशितम्,
स्वशक्तिभिर्नवभिश्च त्रिवृद्भिः ।
वह्निं यथा दारुणि पाञ्चदश्यम्,
मनीषया निष्कर्षन्ति गूढम् ॥❀

(श्रीभा० ६ स्क० ४ अ० २७ श्लो०)

छप्पय

छिपी काठ में अनल प्रकट याजक करि लेवें ।
विश बुद्धि तें हिये छिपे हरिकूँ ज्यों सेवें ॥
सुख-सरूप सरवज्ञ सर्व-विद सरस कहावें ।
नाम रूपतें रहित भेद भ्रम तजि जिनि पावें ॥
मन-बानी तें परे हरि, जिनिको अमित प्रभाव है ।
हौं प्रसन्न प्रभु परमप्रिय, तीन काल जिनि भाव है ॥

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! दक्ष प्रजापति आगे स्तुति करते

❀ दक्ष प्रजापति स्तुति करते हुए कहते हैं—"हे प्रभो ! अग्नि को प्रकट करने में पन्द्रह मन्त्रों से जिस प्रकार काष्ठ में छिपे हुए अग्नि को याजकगण प्रकट करते हैं उसी प्रकार सत्ताईस तत्व रूप जो आपकी अपनी उपाधियाँ हैं उनसे छिपकर अन्तःकरण में गूढ़ भाव से छिपे हुए आपका मनीषी पुरुष सूक्ष्म बुद्धि द्वारा साक्षात्कार करते हैं ।

हुए कहते हैं—हे प्रभो! आप सबके अन्तःकरण में निवास करते हैं। अन्तःकरण में भी आप स्पष्टतया रहते हो सो बात नहीं। आप पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पंचभूतों से शब्द रूप रस गन्ध स्पर्श इन पंच तन्मात्राओं से, पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा पाँच कर्मेन्द्रियों से, मन, अहंकार, महत्तत्व, त्रिगुण तथा पुरुष इन सत्ताइस तत्व रूपी अपनी उपाधियों से छिपकर रहते हैं बहुत गूढ़रूप से गुप्त भाव से निवास करते हैं। अथवा आपकी जो श्री, पुष्टि, इला ऊर्जा, विद्या, अविद्या आदि जो माया की शक्ति हैं उनके द्वारा, पंच तन्मात्रायें, अहंतत्व, महत्तत्व, प्रकृति और पुरुष इन नौंके द्वारा तथा तीनों गुणों के द्वारा गूढ़ भाव से रहते हैं। अर्थात् अन्तःकरण में आप शुद्ध बुद्ध रूप से उपाधि रहित होकर नहीं रहते। वहाँ ऐसे आवरणों में परदे की ओट में रहते हैं, किन्तु वहाँ से मनीषी लोग आपका पता लगा लेते हैं, प्रकृति पुरुष का विवेचन करते-करते बुद्धि द्वारा मन्थन करके, विचार विमर्श द्वारा आपका निर्णय कर लेते हैं। जैसे काष्ठ में अग्निदेव छिपे रहते हैं, गूढ़ रूप से निवास करते हैं। याजकों को अग्निहोत्र के लिये अग्नि की आवश्यकता होती है, तो सामधेनी नामके पंद्रह मन्त्रों द्वारा दोनों अरणियों को मन्थन काष्ठों को घिसते हैं, घिसते-घिसते उनमें से छिपी हुई अग्नि प्रकट हो जाती है, अव्यक्तरूप से निवास करने वाले हुतभुक् व्यक्त हो जाते हैं। दर्श और पौर्णमास यज्ञ १५, १५ दिन होते हैं, अथवा पंद्रह मंत्रों द्वारा प्रकट होती हैं, इसीलिये अग्निदेव का नाम पाञ्चदश्य है जैसे अग्नि का मन्थन द्वारा काष्ठ में साक्षात्कार होता है, उसी प्रकार विवेकी पुरुष आपका अन्तःकरण में साक्षात्कार करते हैं। ऐसे आप सच्चिदानन्द स्वरूप प्रभु को बारम्बार प्रणाम है।

प्रभो! जैसे आम में से छिलका, सूत्र, गुठली तथा चेंप इन

वस्तुओं को त्याग देने पर रस ही रस अवशेष रह जाता है, उसी प्रकार आपके आस पास जो सम्पूर्ण मायिक उपाधियाँ हैं उन्हें त्यागने पर आप ही शुद्ध बुद्ध स्वरूप से रह जाते है। मुक्त पुरुष मोक्ष सुख स्वरूप से आपका अनुभव करते हैं। तत्व दर्शी आपको सर्वनाम भी कहते हैं अर्थात् संसार में जितने भी नाम हैं, वे सब आप के ही आश्रय से तो हैं, सब आप के ही नाम हैं। इसीलिये आप सर्वनाम कहलाते हैं। संसार में जितने रूप हैं वे सब आपके ही है। आपके रूप के अतिरिक्त कोई रूप ही नहीं। इसीलिये आपका नाम विश्वरूप है। आपकी शक्ति अकथनीय है, अनिर्वचनीय है, आपका प्रभाव अप्रमेय है, आप की शक्ति के सम्बन्ध में कुछ भी कहना हास्यास्पद है, ऐसे अमित प्रभाव सम्पन्न हे सर्वेश्वर! मेरे ऊपर आप प्रसन्न हो, मुझे अपनी शक्ति प्रदान करें।

यह कहा जाय कि जिस रूप में वस्तुएँ देखी जाती हैं, जिन नामों से उनका निर्देश किया जाता है, वही आप हैं तो यह कथन भी उचित न होगा। जैसे एक घट है, उसे सब लोग घड़ा-घड़ा कहते हैं, कोई कहे आप घड़ा हैं तो यह कथन असत्य है। इन्द्रियों से उसे देखते हैं हाथों से उठाते हैं बुद्धि से उसके सम्बन्ध में विचार करते हैं मन से उसके सम्बन्ध में मनन करते हैं किन्तु इन सबसे निर्णय होता है, कि किसी कुम्भकार के द्वारा मिट्टी से चाकपर रखकर अग्नि में पकाकर इसे बनाया है, तो यह सब कार्य तो गुणों का हुआ। आप तो गुणातीत हैं इसलिये आप घट पट आदि नहीं हो सकते। जैसे कंकण कुण्डल आदि कनकके द्वारा बनाये जाते हैं कुण्डल आदि बनते हैं उनका नाम रूप प्रकट होता अन्त में उनका नाम रूप मिटाकर अन्त में फिर कनक ही कनक शेष रह जाता है। सत्य तो कनक ही था। बीच में उसका नाम कंकण कुण्डल हो गया अधिष्ठान रूप से कनक तीनों काल में

सत्य ही रहा। कुण्डल बनने से पूर्व भी कनक ही था, कुण्डल बन गया तब भी कनक ही रहा कुण्डल नष्ट हो गया तब भी कनक ही कनक शेष रह गया। इसी प्रकार आप नाम रूपात्मक जगत् से पूर्व भी थे, नाम रूपात्मक होने पर भी रहे और जब ये गुणों के कार्य नाम रूप न रहेंगे तब भी आप विद्यमान् रहेंगे। आप स्वतः नाम रूपात्मक नहीं हैं, किन्तु नाम रूप से आप लक्षित होते हैं। ऐसे तीनों काल में एक रस रहने वाले सर्वान्तर्यामी प्रभु को पुनः पुनः प्रणाम है।

प्रभो! संसार में आप के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। आप निष्क्रिय और निष्कल होते हुए भी इस जगत् को बनाते हैं और फिर इसी में प्रवेश कर जाते हैं। आप ईश्वर रूप से प्राणि मात्र के हृदय में रहकर जैसे यन्त्री यन्त्र को इच्छानुसार घुमाता फिराता और नचाता है उसी प्रकार आप भी सबका स्वेच्छा से संचालन करते हैं सबसे आगे आप ही थे। आप आत्मा में रहते हैं, पृथ्वी आदि भूतों में रहते हैं आप कभी क्षर न होने वाले तत्व में संचार करते हैं इसीलिये आपको अक्षर कहते हैं आप अव्यक्त में संचार करते हैं इसलिये अव्यक्त ही आपका शरीर है। आप अणु से भी अणु हैं और महान् से भी महान् हैं आप सत्य स्वरूप हैं आनन्द स्वरूप हैं, चैतन्य स्वरूप हैं, ब्रह्म स्वरूप हैं। जगत् में जो भी कुछ परिलक्षित हो रहा है वह आप के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

समस्त संसारी व्यवहार ८ रूपों में विभक्त हो रहा है। इसी लिये वैयाकरणों ने कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण और सम्बोधन ये आठ विभक्तियाँ मानी हैं। जैसे शर्करा से अनेक खिलौने बनाये जायँ उनमें से कुछ चैतन्य होकर क्रिया भी करने लगें और कोई कहे-हाथीको लाओ। घोड़े को बाँध आओ, वृक्ष के फल तोड़ लाओ, अमुक के लिये

यह वस्तु दे दो तो कहने वाला, लाने वाला, जो लाया गया है, जिसके द्वारा किया गया है, जिसके लिये किया गया है, वे सभी तो शर्करा से निर्मित हैं। इसी प्रकार इस जगत् में आप ही आप हो।

वैयाकरण लोग कर्ता को स्वतन्त्र बताते हैं वह कार्य करने में स्वतन्त्र हैं। वह कर्ता रूप में आप ही हैं संसार के एक मात्र कर्ता आप ही हैं। जो किया जाय उसे कर्म कहते हैं। कर्म भी आप ही बन गये हो। आपके अतिरिक्त दूसरा कोई कर्म है ही नहीं। जिसके द्वारा कर्म किया जाता है उसे करण कहते हैं। इसीलिये इन्द्रियों का नाम भी करण है। करण रूप में आप ही संसार में फैले हुए हो। जिस लिये किया जाता है दिया जाता है उसे सम्प्रदान कहते हैं। सो प्रभो! आप सम्प्रदान भी हैं। देने योग्य भी आप हैं और नमस्कार करने योग्य भी आप ही हैं। अपादान उसे कहते हैं जो पृथक् करे जैसे घर से परे आप से परे आपसे श्रेष्ठ आपसे भिन्न कुछ भी नहीं है। वस्तुओं को जो जोड़ता है उसे सम्बन्ध कहते हैं। जैसे कृष्णदास संसार के सभी सम्बन्ध आपके ही द्वारा जुड़ते हैं। सम्पूर्ण जगत् के सगे सम्बन्धी आप ही हैं। समस्त सम्बन्ध आपकी सन्निधि में सम्पन्न होते हैं। अधिकरण उसे कहते हैं जिसमें रहे जिसमें एकभूत हो जाये। जैसे मनमें श्याम समा गये मथुरा में श्रीकृष्ण बसते हैं। सो प्रभो! घट-घट में आप ही रह रहे हैं। सबमें आप ही समाये हुए हैं अतः अधिकरण भी आप ही हैं। जिसे नाम लेकर पुकारते हैं, हे हो अरे आदि कहकर उसे अभिमुख करने की चेष्टा करते हैं उसी का नाम सम्बोधन। सो हे प्रभो! हे हरे! हे सर्वान्तर्यामी! समस्त सम्बोधनों

का समावेश आप में ही होता है। सभी सम्बोधन आपके ही लिये प्रयुक्त किये जाते हैं।

स्वामिन् ! जिसमें जहाँसे जिसके द्वारा जिसका जिससे जिसके लिये जिस कार्य को जो जिस प्रकार करता है अथवा जिसकी प्रेरणा से करने वाला कार्य किया जाता है वह सभी आप ही हैं। क्योंकि घड़ाके पूर्व हो मिट्टी थी मिट्टीके अनन्तर ही अनेक नाम रूपों वाले घड़ा, सकोरा परई आदि वर्तन बने। सम्पूर्ण इस दृश्य मान कार्य कारण से आप पूर्व सिद्ध हैं। आपमें भेद भाव भी नहीं। यह हो कि आप के कोई बराबर वाला हो सो भी बात नहीं न कोई आपसे वड़ा है न आपसे कोई भिन्न स्वभाव वाला है। न समान स्वभाव वाला। इस प्रकार आप सजातीय विजातीय सभी भेद भावों से रहित हैं। आप किसी के द्वारा उत्पन्न नहीं हुए। इसीलिये आपका कोई भी कारण नहीं। क्योंकि आप तो अनादि हैं अज हैं, परिपूर्ण हैं, शाश्वत हैं फिर आपका कारण कोई हो ही कैसे सकता है। किन्तु आप ही आपसे ही हुई है। इस संसार रूपी महान् वृक्ष के एकमात्र आप ही बीज हैं। जैसे बीज ही वृक्ष बन जाता है। वृक्ष का नाश भले ही हो जाय, किन्तु बीज का कभी नाश नहीं होता वह निरन्तर बना ही रहता है। वृक्ष में जैसे बीज ने ही जड़ स्कन्ध, फूल पत्ते तथा फल के भिन्न भिन्न रूप रख लिये हैं। आदि में भी बीज ही था अन्त में भी बीज ही शेष रहेगा, मध्य में उनसे वृक्ष का रूप रख लिया है। सो जो आदि अन्त में रहता है वही मध्य में भी माना जाता है। इस प्रकार यह जो सम्पूर्ण भेद भाव पूर्ण नाना नाम रूप वाला प्रपञ्च दृष्टिगोचर हो रहा है। उसके एकमात्र कारण आप सर्वेश्वर सर्वाधार ही हैं। अतः आपके चरणारविन्दों में बारम्बार प्रणाम है। आप अनन्त को अनन्त नमस्कार है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस प्रकार दक्ष प्रजापति ने सृष्टि वृद्धि के हेतु हंस गुह्य स्तोत्र से भक्तिभाव पूर्ण भगवान् की स्तुति की। हंसगुह्य स्तोत्र बहुत बड़ा है। इसके शेषांश को मैं आपको सुनाऊँगा। आशा है आप कृपापूर्वक दत्तचित्त होकर गुह्यातिगुह्य स्तोत्र को सुनेंगे।"

छप्पय

जाकूँ वानो वके दीठि देखे जिनि वस्तुनि।
परी नहीं ब्रह्म काज सबहैं गुन इन्द्रिनि॥
सब विभक्ति आधार आपु ई नाथ कहावें।
करता कारन बनें बनि खेल खिलावें॥
कारज कारनतें प्रथम, सदा रहें अज सर्वगत।
भेद सजाति विजाति नहिं, बीज विश्व के नित्यरत॥

पद

प्रभु तुम बीज विश्व कहलाओ।
तुम ही आओ तुम ही जाओ, तुम ही विश्व बनाओ॥१॥
तुम भरमाओ तुमहि छुड़ाओ, तुम ही नाच नचाओ।
तुम ही करो तुमहिं करवाओ, करता करम कहाओ॥२॥
सम्बोधन, सम्बन्ध करन,अधिकरन बनो बनवाओ।
सम्प्रदान अरु अपादान सब, तुम ही स्वाँग रचाओ॥३॥
निज पर भेद भावतें वंचित, केवल एक लखाओ।
सबके कारन सबके तारन, सबकूँ प्रभु अपनाओ॥४॥

दक्ष प्रजापतिकृत हंसगुह्य-स्तोत्र

प्रजापतिरुवाच

नमः परायावितथानुभूतये,
गुणत्रयाभासनिमित्तबन्धवे ।
अदृष्टधाम्ने गुणतत्वबुद्धिभिः,
निवृत्तमानाय दधे स्वम्भुवे ॥१॥
न यस्य सख्यं पुरुषोऽवैति सख्युः,
सखा वसन् संवसतः पुरेस्मिन् ।
गुणो यथा गुणिनी व्यक्तदृष्टेः,
तस्मै महेशाय नमस्करोमि ॥२॥
देहोऽसवोऽक्षा मनवो भूतमात्रा,
नात्मानमन्यं च विदुः परं यत् ।
सर्वं पुमान् वेद गुणांश्च तज्ज्ञो,
न वेद सर्वज्ञमनन्तमीडे ॥३॥
यदोपरामो मनसो नामरूप,
रूपस्य दृष्टस्मृतिसम्प्रमोषात् ।
य ईयते केवलया स्वसंस्थया,
हंसाय तस्मै शुचिसद्मने नमः ॥४॥

मनीषिणोऽन्तर्हृदि सन्निवेशितं,
स्वशक्तिभिर्नवभिश्च त्रिवृद्भिः ।
वह्निं यथादारुणिपाञ्चदश्यं,
मनीषया निष्कर्षन्ति गूढम् ॥५॥

स वै ममाशेषविशेषमायया,
निषेधनिर्वाणसुखानुभूतिः ।
स सर्वनामा सच विश्वरूपः,
प्रसीदतामनिरुक्तात्मशक्तिः ॥६॥

यद् यन्निरुक्तं वचसा निरूपितं,
धियाक्षभिर्वा मनसा वोत यस्य ।
मा भूत् स्वरूपं गुणरूपं हि तत्तत्,
स वै गुणापायविसर्गलक्षणः ॥७॥

यस्मिन् यतो येन च यस्य यस्मै,
यद् यो यथा कुरुते कार्यते च ।
परावरेषां परमं प्राक् प्रसिद्धं,
तद् ब्रह्म तद्धेतुरनन्यदेकम् ॥८॥

यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै,
विवादसंवादभुवो भवन्ति ।
कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्ममोहं,
तस्मै नमोऽनन्तगुणाय भूम्ने ॥६॥

अस्तीति नास्तीति च वस्तुनिष्ठयोः,
एकस्थयोर्भिन्नविरुद्धधर्मयोः ।
अवेक्षितं किञ्चन योगसांख्ययोः,
समं परं ह्यनुकूलं बृहत् तत् ॥१०॥

योऽनुग्रहार्थं भजतां पादमूलम्,
अनामरूपो भगवाननन्तः ।
नामानि रूपाणि च जन्मकर्मभिः,
भेजे स मह्यं परमः प्रसीदतु ॥११॥

यः प्राकृतैर्ज्ञानपथैर्जनानां,
यथाशयं देहगतो विभाति ।
यथानिलः पार्थिवमाश्रितो गुणं,
स ईश्वरो मे कुरुतान्मनोरथम् ॥१२॥

॥ श्रीहरिः ॥

श्री बद्रीनाथ-दर्शन

(श्रीब्रह्मचारीजीका एक अपूर्व महत्वपूर्ण ग्रन्थ)

श्रीब्रह्मचारीजीने अनेकों बार श्रीबद्रीनाथजी की यात्रा की है। यात्रा ही नहीं की है, वे वहाँ महीनों रहे हैं। उत्तराखण्डके छोटे बड़े सभी स्थानों में वे गये हैं उत्तराखण्ड कैलाश, मानसरोवर, शतोपन्थ, लोकपाल और गोमुख ये पाँच स्थान इतने कठिन हैं कि जहाँ पहाड़ी भी जानेसे भयभीत होते हैं। उन स्थानोंमें ब्रह्मचारीजी गये हैं वहाँका ऐसा सुन्दर सजीव वर्णन किया गया है, कि पढ़ते-पढ़ते वह दृश्य आँखं के सम्मुख नृत्य करने लगता है। उत्तराखण्ड के सभी तीर्थों का इसमें सरस वर्णन है, सबकी पौराणिक कथायें हैं. किंवदन्तियाँ हैं, इतिहास हैं और यात्रावृत्त हैं। यात्रा सम्बन्धी जितनी उपयोगी बातें हैं सभीका इस ग्रन्थमें समावेश है। बद्रीनाथजीकी यात्रा पर इतना विशाल महत्वपूर्ण अभी तक किसी भाषामें प्रकाशित नहीं हुआ। आप इस एक ग्रंथसे ही घर बैठे उत्तराखण्ड के समस्त पुण्यस्थलोंके रोमाञ्चकारी वर्णन पढ़ सकते हैं। अनुभव कर सकते हैं। यात्रामें आपके साथ यह पुस्तक रहे तो फिर आपको किसीसे कुछ पूछना शेष नहीं रह जाता। लगभग सवा चार सौ पृष्ठकी सचित्र सजिल्द पुस्तकका मूल्य ४. रुपया मात्र है थोड़ी ही प्रतियाँ हैं, शीघ्र मँगावें दूसरा संशोधित संस्करण छप गया है।